श्रीमद् भागवत गीता

9.2

श्रीमद् भगवत गीता

भगवान श्री कृष्णजी ने महाभारत के युद्ध में जो उपदेश वीर अर्जुन को दिया था, उसे 'श्रीमद् भगवत गीता' के रूप में संसार के सामने भेंट किया गया।

उसे कहते हैं गीता का ज्ञान। ज्ञान का यह सागर, अब आपके सामने सरल हिन्दी भाषा में भेंट करते हुए मैं जितना भी गर्व करूं वह कम होगा।

प्रकाशन ।

मधुर प्रकाशक (रजि०)
ए १२-१३ बी-२ अंसल बिल्डिंग,
डा० मुकर्जी नगर, दिल्ली-९

पुस्तक—श्रीमद् भागवत गीता

लेखक—नरेन्द्र शर्मा

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण—जनवरी १९८८

मूल्य : छः रुपये

हमारे अन्य बहुचर्चित प्रकाशित पुस्तकें—

- महाभारत
- श्रीमद् भागवत गीता
- रामायण
- दुर्गा उपासना
- हनुमान उपासना
- मैडिकल सैक्स गाइड
- वात्सायन काम-सूत्र
- चाणक्य नीति
- जनरल नालेज १९८८
- विक्रम और वेताल
- दादा दादी की कहानियां

प्रकाशक— फोन : ७१२४३७७

मधुर प्रकाशन (रजि०)

ए १२-१३ बी, २ अंसल बिल्डिंग

डॉ० मुखर्जी नगर नई दिल्ली-९

मूल्य—६.०० रुपए।

सर्व प्रथम सरल हिन्दी भाषा में प्रकाशित

सम्पूर्ण अठारह अध्याय

श्रीमद् भगवत गीता

नरेन्द्र शर्मा—
(की लेखनी से)

पहला अध्याय

धृतराष्ट्र बोले ! हे संजय, धर्म भूमि कुरुक्षेत्र में इकट्ठे हुए, युद्ध की इच्छा वाले मेरे और पांडव पुत्रों ने क्या किया।

महाराज, उस समय राजा दुर्योधन ने पांडवों की सेना को देखकर गुरु द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा—

'हे आचार्य, आपके पास मैं इसलिए आया हूं कि पांडवों की व्यूहकार खड़ी, इस विशाल सेना को देखें, उस सेना में बड़े-बड़े वीर अपने धनुष धारण किए, तैयार खड़े हैं, इनमें सबसे महान योद्धा भीम, अर्जुन और इनके ही समान अनेक वीर हैं, हे गुरु-देव, उन सबको देखकर आप मुझे यह भी बतायें कि इनकी तुलना में हमारे पास जो श्रेष्ठ वीर हैं, मैं उनके बारे में आपसे कहता हूं।

एक तो स्वयं आप और भीष्मपितामह, वीर कर्ण, कृपाचार्य जैसे अनेकों वीर हैं, भीष्मपितामह द्वारा रक्षित हमारी यह सेना सब प्रकार से अजय है और अब आप ही यह सब कुछ देख सकते हैं, इसलिए आप निःसन्देह भीष्मपितामह की ही सब ओर से रक्षा करें।

इस प्रकार से द्रोणाचार्य कहते हुए दुर्योधन के वचनों को सुन कर कौरवों में वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्म ने उस दुर्योधन के

हृदय में हर्ष पैदा करते हुए, उच्च स्वर में शंख बजाया, उसके साथ ही ढोल नगारे आदि बजने लगे।

उसके अनन्तर सफेद घोड़ों से युक्त सजे हुए रथ में बैठे श्री कृष्णजी आए और अर्जुन ने भी उनके संग आकर अलौकिक शंख बजाए, उनमें श्री कृष्ण जी ने पाञ्च जन्य नामक शंक अर्जुन ने देवदत्त नामक शंख बजाया, भयानक कर्म वाले भीमसेन ने पौंड्र नामक महाशंख बजाया।

कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्त विजय शंख बजाया, इस तरह से पांडव सेना के सारे वीरों ने बारी-बारी से अपने-अपने शंख बजाये। उस भयंकर शब्द ने आकाश और पृथ्वी भी शब्दायमान कर दिए, इससे धृतराष्ट्र पुत्रों का हृदय विदीर्ण कर दिया।

'हे राजन ! उसके पश्चात कपिध्वज अर्जुन ने खड़े हुए धृत-राष्ट्र के पुत्रों को देखकर, उस शस्त्र चलने की तैयारी के समय धनष उठाकर ह्रषीकेश श्रीकृष्ण जीं से यह वचन कहा—

हे अच्युत, मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कर दीजिए, जब तक मैं इस स्थित हुई युद्ध की कामना करने वालों को अच्छी प्रकार से देख लूं कि इस युद्ध रूपी व्यापार में मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना है। मैं सबको देखना चाहता हूं।

संजय बोला ! हे महाराज धृतराष्ट्र जी—

अर्जुन द्वारा कहे गए इन शब्दों को सुन श्री कृष्ण जी रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले गए।

रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करके श्री कृष्ण बोले —'लो अर्जुन अब तुम अपनी मनोकामना पूरी कर लो, देखो सामने पितामह खड़े हैं।'

अर्जुन ने युद्धक्षेत्र के चारों ओर अपनी नजर दौड़ाई, अपने कौरव भाइयों को देखा, पितामह भीष्म गुरु द्रौणा को देखा, उन के पास खड़े दुर्योधन को भी वड़े ध्यान रखा, फिर उदास भरे स्वर में बोला—

'हे कृष्ण ! इस युद्ध की इच्छा वाले खड़े हुए लोगों को देखकर मेरे शरीर के सारे अंग शिथिल हो जाते हैं और गला खुश्क हो रहा है। मेरे हाथों से धनुष गिर रहा है इसी कारण मैं खड़ा होने से भी मजबूर हूं—हे केशव लक्षणों को भी विपरीत ही देखता हूं, तथा युद्ध में अपने ही लोगों को मारकर कल्याण भी नहीं देखता—हे भगवान मैं अपने ही भाइयों, गुरु पितामह और अन्य रिश्तेदारों को मार यह राज्य प्राप्त करके क्या करूंगा, मुझसे यह पाप नहीं होगा प्रभु ! आप मेरे रथ को वापस ले चलो

'यह तुम क्या कह रहे हो अर्जुन, श्री कृष्ण ने आश्चर्य से अर्जुन के उदास मुख की ओर देखा।

प्रभु यह पाप है अपने ही वंश के लोगों की हत्या करके राज्य प्राप्त करना पाप है। ऐसा पाप वो कोई पागल ही कर सकता है प्रभु मेरे रथ को वापस ले चलो, मैं युद्ध नहीं करूंगा।'

हे धृतराष्ट्रजी, यह साफ कहकर अर्जुन धनुष छोड़ रथ के पिछले भाग में जा बैठा।

दूसरा अध्याय

संजय ने धृतराष्ट्र की उन अन्धी आंखों को देखा और सोचने लगा यह महापुरुष अन्धा होते हुए भी अपने वंश के इस महायुद्ध

को हर घटना सुनने के लिए कितना इच्छुक है।

'संजय मुझे आगे का हाल बताओ कि ये कैसे हुआ।'

संजय बोला—कि पूर्वोक्त प्रकार से करुणा करके व्याप्त और चिंतित अर्जुन की आंखों में आंसू देखकर भगवान कृष्ण ने कहा—

हे अर्जुन तुमको, इस युद्धस्थल में यह अज्ञान कैसे प्राप्त हुआ तुम्हारे जैसे वीर के मुंह से नपुसंकता की बात शोभा नहीं देती उठो और युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

'हे प्रभु ! आप ही बताओ कि मैं इस युद्ध में गुरु द्रोणा और भीष्मपितामह पर कैसे बाण चलाकर उनकी हत्या कर दूं, यह तो दोनों ही मेरे पूज्य हैं, इन लोगों के खून के हाथ रंगकर यदि मुझे यह राज्य प्राप्त हो भी जाए तो मुझे उससे आत्मिक शांति नहीं मिलेगी फिर मेरे पिता के ही सगे भाई की सन्तान मेरे सामने है इन सबको मारकर मुझे क्या मिलेगा···यही न पाप··· आप मुझसे यह पाप क्यों करवाना चाहते है यह आप ही बताएं भगवन, मैं तो अंधेरे में भटक गया हूं।'

संजय बोला—हे राजन ! निन्द्रा को जीतने वाला अर्जुन, युद्ध की इच्छा छोड़कर श्रीकृष्ण जी के पास बैठ गया।

भगवान श्रीकृष्णने हंसते हुए अर्जुन की ओर देखकर कहा।

हे अर्जुन ! तुम क्यों शोक करते हो ? पण्डितों से ऐसे वचन कहते हो, यह पण्डित तो जिनके प्राण गए हैं उनके लिए भी चिन्ता नहीं करते जिनके प्राण नहीं गये, उनकी भी इन्हें कोई चिन्ता नहीं क्योंकि—

'आत्मा तो नित्य है इसलिए किसी प्रकार चिंता करना बेकार है, और यह बात सत्य है कि मैं किसी युग में नहीं था या तुम किसी युगमें नहीं थे और न ही यह बात सत्य है कि हम आगे चलकर नहीं होंगे, किंतु जैसे जीवात्मा इस शरीर में कुमार युवा और वृद्ध अवस्था में होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ती होती है यह बात केवल बुद्धिमान और ज्ञानी ही जानते हैं ज्ञानी पुरुष इस माया जाल से प्रभावित नहीं होता, यह मत भूलो कि आत्मा कभी नहीं मरती, यह शरीर ही बदल जाता है, मानव कभी नहीं मरता, उसका माया जाल वाला शरीर ही बदलता है। यह सब कुछ इन्द्रियों का ही दोष है, जिस वीर पुरुष को इस इन्द्रियों के विषय में व्याकुल नहीं कर सकते, वह मोक्ष के योग्य होता है।'

हे अर्जुन ! अस्त वस्तु का अस्तित्व नहीं है और सत का अभाव नहीं है, इस प्रकार दोनों का ही तत्व ज्ञानी पुरुषों द्वारा किया गया है। क्योंकि इस अविनाश का नाश करने वाला नहीं है, जिससे यह जगत सम्पूर्ण जगत व्याप्त है इस नाश हित अपने नित्य स्वरूप जीवात्मा के यह सब शरीर नाश्वत कहे गए हैं इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन तू युद्ध कर।'

'जो इस आत्मा को मारने वाला नहीं समझता है तथा जो इसको मरा मानता है वे दोनों ही नहीं जानते हैं कि यह आत्मा न मरती है और न मारी जाती है, यह अमर है।'

'अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्मा को नाश रहित नित्य अजन्मा और अव्यय जानता है वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है, और कैसे किसको मारता है ? शब्द स्पर्श रूप, रस गंध को इन्द्रियों के विषय हैं, वह सरदी-गरमी और सुख-दुख के देने वाले हैं,

जिनको इन्द्रियों के सुख दुःख अपनी निश्चलता से चलायमान न कर सकें, उन्हें पुरुषों ने अमृत पान किया है।

हे अर्जुन जिनको यह इन्द्रियों के विषय नहीं सताते जो दुःख सुख को बराबर ही जानते हैं, वह मोक्ष के अधिकारी होते हैं।

आत्मा महान है, यही गुरु है, यह अमर है तुम भीष्म पिता मह की मृत्यु की बात करते हो वह व्यर्थ है उनकी आत्मा को तुम नहीं मार पाओगे, केवल उनका शरीर ही समाप्त होगा, आत्मा तो आवागमन है, जैसे प्राणी पुराने वस्त्र उतारकर नए वस्त्र पहनता है ऐसे ही यह आत्मा पुराना शरीर उतारकर नए शरीर में प्रवेश कर जाता है, फिर तुम तो क्षत्रिय हो, क्या तुम अपने धर्म का पालन नहीं करोगे, क्या तुम यह नहीं जानते कि जो क्षत्रिय युद्ध में मरता है, वह सीधा स्वर्ग में जाता है। यदि तुम क्षत्रिय होकर युद्ध नहीं करोगे, तो यह कितना बड़ा पाप होगा, यह सारे वीर योद्धा तुम्हें बुजदिल भी कहेंगें क्या तुम अपना अपमान सह सकोगे।

अर्जुन कर्म करना तुम्हारा कर्तव्य है।

फल की आशा मत रखो जिसके कर्म अच्छे हैं, उन्हे तो फल अच्छा ही मिलता है।

हे अर्जुन बुद्धि योग से कर्म नीच है इसलिए बुद्धि का आसरा लेकर कर्म करो जो ज्ञानी पुरुष हैं वे किसी फल का कर्म नहीं चाहते, जो चाहते हैं वे नीच मति हैं जो बुद्धि योग से कर्म करता है, वह इसी संसार में संचित पाप-पुण्य को त्याग देता है। जब तुम्हारी बुद्धि इस मोह रूपी सुख-दुःख से पार होकर अत्यन्त

शुद्ध हो जाएगी, तब तुम विरक्त हो जाओगे अभी मोह-माया जाल में पड़कर तुम्हारी बुद्धि अस्थिर हो गई है जब यह स्थिर हो जायगी उसी समय तुम्हें सब पता चल जायेगा।

हे भगवन ! मुझे यह बताओ जिस पुरुष की बुद्धि स्थिर हो उसका क्या लक्षण होता है ?

हे अर्जुन ! जिसको कोई कामना नहीं, वह अपनी आत्मा को पाकर सन्तुष्ट है उसकी निश्चल बुद्धिजान जिसका मन दुःख पड़ने पर घबराता है। जिसे सुख से खुशी नहीं होती, रोग भय, क्रोध जिसके पास नहीं आते हैं वह निश्चल बुद्धि है।

वीर अर्जुन जिसका किसी पदार्थ से स्नेह नहीं और जो किसी शुभ वस्तु से हर्षित नहीं होता, जैसे कछुआ अपने सब अंगों को सिकोड़ लेता है वह मनुष्य उसी तरह अपनी इन्द्रियों को उसके विषयों में लपेट लेता है विद्वान ज्ञानी पुरुष को ईश्वर के दर्शन करने से विषय वासना दूर हो जाती है इन्द्रियां बड़ी प्रबल और लोभ कारक है इन्द्रियों को बस में करना ही सबसे बड़ी विजय है जिस प्राणी ने अपना मन बस में कर लिया वही महान है वही ज्ञानी है उसे ही आत्मिक शाँति प्राप्त होती है।

जिस प्राणी ने अपनी इन्द्रियों को बस में नहीं किया उसकी वुद्धि कभी स्थिर नहीं होती उसे शांति नहीं मिल सकती जिसका मन शांत नहीं उसे प्रभु नहीं मिलते न ही उसे सुख मिलता है।

अर्जुन सागर में पूर्णरीति से जल भरा हुआ है, उसमें बहुत से नदी और नालों का जल आकर गिरता है परन्तु तो भी वह अचल और प्रतिष्ठित रहता है अर्थात वह अपनी मर्यादा का उलंघन नहीं करता इसी प्रकार बुद्धिमान पुरुषों में भी सब काम नायें लीन होती हैं और उनकी शांति बनी रहती है परन्तु काम-

नाओं की इच्छा करने वालों को शांति सदा भंग रहती है।

जो पुरुष सारी कामनाओं को छोड़कर निःस्वार्थ सोचता है और ममता तथा अहंकार को छोड़ देता है वही शांति को पाता है, हे अर्जुन यह मैंने तुमसे ब्रह्म ज्ञान की बात कही है ब्रह्मज्ञानी निष्ठा को पाकर फिर इस संसार की माया के मोह में नहीं फंस जाता, अन्त समय में जो कोई क्षण भर के लिए भी इस ब्रह्म ज्ञान के निष्ठा में स्थिर हो जाता है वह मोक्षपद को प्राप्त हो जाता है।

तीसरा अध्याय

भगवान श्री कृष्ण की यह बात सुन अर्जुन ने प्रश्न किया—

हे प्रभु ! यदि आपने कर्मों की अपेक्षा ज्ञान को श्रेष्ठ माना है तो आप मुझे इस भयंकर कर्म में क्यों लगाते हो मुझे तो ऐसी बात कहिए जिससे मेरा कल्याण हो जाए।

निष्पाप अर्जुन ! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा मैंने पहले कही हैं।

ज्ञानियों के ज्ञान योग से और योगियों की निष्कामिक कर्म योग से किन्तु किसी भी मार्ग के अनुसार कर्म को अपना स्वरूप त्याग देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मनुष्य न तो कर्म के न करने से निष्कर्म को प्राप्त होता है और न ही कर्म को त्याग देनें से भगवत्साक्षात्कार रूप सिद्धि के लिए प्राप्त होता है।

अतः सर्वथा कर्मों का स्वरूप से त्याग हो भी नहीं सकता,

क्योंकि कोई भी पुरुष किसी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता निःसन्देह सभी पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा पर वश हुए कार्य करते हैं।

इसलिए जो मूढ़ बुद्धि पुरुष कामेन्द्रियों को हठ से होकर इन्द्रियों के भोगों के मन से चिन्ता करता रहता है वह मिथ्याचारी अर्थात दम्भी कहा जाता है और जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वस में करके अनासक्त हुआ कामेन्द्रियों से कर्म योग का अचरण करता है वह श्रेष्ठ है इसलिए तुम शस्त्र विधि से नियत किए हुए स्वधर्म रूप वर्म को कर क्योंकि कर्म को न करने की उपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तुम्हारा शरीर निर्वाह भी सिद्ध न होगा।

हे अर्जुन ! वन्धक के भय से भी कर्मों का त्याग करना योग्य नहीं है क्योंकि यज्ञ अर्थात विष्णु जी के निमित्त किए हुए कर्म के सिवा अन्य कर्म में लगा हुआ ही यह मनुष्य कर्मों द्वारा बंधता है, इसलिए मैं तुमसे यही कहूंगा कि आसक्ति से रहित हुआ इस परमेश्वर के निमित्त भली प्रकार आचरण कर कर्म न करने से तू पाप को प्राप्त होगा, क्योंकि प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजा को रचकर कहा कि यज्ञ द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम लोगों की इच्छित कामनाओं को देने वाला होवे तथा तुम लोग इस यज्ञ द्वारा देवताओं को उन्नति करो और वे देवता लोग तुम लोगों की उन्नति करें।

इस प्रकार आपस में कर्तव्य समझकर उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होंगे तथा यज्ञ द्वारा बढ़ाए हुए देवता लोग तुम्हारे लिए बिना मांगे ही प्रिय भोगने को देंगे उनके द्वारा

दए गए भोगों को जो पुरुष बिना दिए ही भोगता है वह निश्चय चोर है।

कारण कि यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ सब पापों से छूटते हैं और जो पापी लोग अपनी शरीर पोषण के लिए पकाते हैं वे केवल पाप ही खाते हैं क्योंकि सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं ओर अन्न की उत्पति वृष्टि से होती है यज्ञ से होती है और वह यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होने वाला है तथा उस कर्म को तुम वेद से पैदा हुआ जानो और वेद अविनाशी परमात्मा पैदा हुआ है इससे सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है।

हे पार्थ जो पुरुष इस लोक में इस प्रकार चलाए हुए सृष्टि चक्र के अनुसार नहीं चलता अर्थ शास्त्र अनुसार कर्म को नहीं करता वह इंद्रियों के सुख को भोगने वाला पाप आयु पुरुष व्यर्थ ही जाता है।

परन्तु जो मनुष्य आत्मा ही में प्रीति वाला और आत्मा ही में तुम तथा आतमा से ही संतुष्ट होओ उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं है क्योंकि इस संसार में उस पुरुष की किये जाने से भी कोई प्रयोजन नहीं है तथा इसका सम्पूर्ण भूतों में से कुछ भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं है तो भी उसके द्वारा केवल अहित के कर्म किए जाते हैं।

इससे तुम अनासक्त हुए निरन्तर कर्तव्य कर्म का अच्छी प्रकार से आचरण करो क्योंकि अनासक्त कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त करता है क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो, जो उचारण करते हैं अन्य पुरुष भी उसके ही अनुसार वरतते हैं वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है लोग भी उसके अनुसार वरताव करते हैं

इसलिए हे अर्जुन ! यद्यपि मुझे तीन लोकों में कुछ भी कर्तव्य नहीं है तो भी मैं कर्म से ही बरतता हूं। क्योंकि यदि मैं सावधान हुआ तो कर्म भी सावधान न होंगे, यह सारे मनुष्य मेरे बरताव के अनुसार ही चलते हैं और यदि मैं कर्म न करूं तो यह सब लोग भ्रष्ट हो जाएं, इसलिए मैं तुम्हें यह बात फिर समझाता हूं कि जैसें भी कोई कर्म करेगा वैसा ही फल पा लेगा।

ज्ञानी पुरुषों को चाहिए कि अज्ञानियों के लिए कोई श्रद्धा मन में न रखें, किंतु स्वयं परमात्मा के स्वरूप में स्थित हुए और सब कर्मों को अच्छो प्रकार करते हुए उनसे भी वैसे ही करवायें।

'हे अर्जुन ! वास्तव में सम्पूर्ण कर्म प्रकृति गुणों द्वारा किए हुए हैं तो भी अहंकार से मोहित हुए अन्त करण वाला पुरुष मैं कर्त्ता हूं, ऐसे मान लेता है, परन्तु हे महाबाहो, गुण विभाग और कर्म विभाग के तत्व को जानने वाला ज्ञानी पुरुष, सम्पूर्ण गुण गुणों में बरतते हैं, ऐसा मानकर नहीं आसक्त होता है।

और प्रकृति के गुणों से भरे पुरुष गुण और कर्मों में आसक्त होते हैं, उन मूर्ख और अज्ञानी लोगों को भली-भांति समझने वाले पुरुष से दूर ही रहें।

'इसलिए हे अर्जुन ! तुझे ध्यानपूर्वक सच्चे मन से कर्मों का मुझमें सम्पूर्ण करके सब कुछ भूलकर युद्ध करो, यह बात याद रखो जो भी प्राणी मुझ पर विश्वास करते हैं, उन्हें किसी बात की चिंता नहीं करनी चाहिए उनकी आत्मा का डर सदा के लिए समाप्त हो जाता है, जो लोग अज्ञानी हैं वे डरते हैं।'

हर प्राणी अपनी मनोवृति के अनुसार ही कर्म करता है। जैसे ज्ञानी अपनी मनोवृति के अनुसार काम करता है ऐसे में किसी की जिद्द क्या काम करेगी।

इसलिए मनुष्य को यह चाहिए इन्द्रय-इन्द्रिय के अर्थ में अर्थात इन्द्रियों के भोग में जो राग और दोष हैं उन दोनों के वश नं हो, क्योंकि ये दोनों ही उसके कल्याण मार्ग के शत्रु हैं। इन दोनों को ही जीतकर धर्म का पालन करे, धर्म के लिए मरना भी कल्याणकारी होता है।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण की मधुर वाणी सुनकर पूछा कि—

'हे भगवन् भिर यह पुरुष वलात्कार से लगाए हुए सदृश न चाहता हुआ भी पाप क्यों करता है ?

'अर्जुन रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही कोध है यह बड़ा पापी है। इसके लिए तुम इसे ही अपना शत्रु मानो जैसे घुट से आग और मल से दर्पण ढक जाता है। वैसे ही उस काम-क्रोध से ज्ञान ढका हुआ है, इन्द्रियां मन और वुद्धि को इस काम के वास्गा न कहे जाते हैं और यह काम ही इन मन बुद्धि को और इन्द्रियों द्वारा ही ज्ञान को अशुद्ध करता है। मनुष्य तो अपने काम जाल में फंसकर उसका शत्रु बन जाता है।'

'इसलिए हे अर्जुन पहले तुम इन्द्रियों को अपने वस में करो। ज्ञान के इस सबसे बड़े शत्रु को मार डालो अपने आपपर विश्वास रखो। यह मत कहनां कि सैं इन पर विजय नहीं पा सकता। तो यह तुम्हारी भूल है। तुम्हें अपने अन्दर आत्मशक्ति पैदा करनी होगी क्योंकि इस हृदय इन्द्रियों से दूर (श्रेष्ठ वलवान) कहते हैं, और इन इन्द्रियों से आगे मन है, और बुद्धि से भी अत्यन्त परे आत्मा है। इसलिए तुम बुद्धि की शक्ति से आत्मा को वश में करो अपनी शक्ति को समझो और शत्रु को जो काम रूप है उस मार डालो।'

चौथा अध्याय

श्रीकृष्ण जी इसके पश्चात अर्जुन से बोले—

'हे अर्जुन मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में सूर्य के प्रति कहा था, और सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा था इसके पश्चात मनुजी ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु से कहा इस तरह से इसज्ञान को राजर्षियों नें जाना परन्तु वह योग वहुत समय से पृथ्वी पर से लोप हो गया था।'

'अब वही योग मैंने तुम्हें बताया है, क्योंकि एक ओर मेरे भक्त हो दूसरी ओर मित्र भी हो, इसलिए तुम इस महायोग को समझकर अपने जीवन में नया परिवर्तन लाओ, इस मोह माया के जाल से वाहर निकलकर संसार को धर्म पौर ज्ञान का संदेश दो।'

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से ज्ञान मार्ग जानकर पूछा—

'हे श्रीकृष्ण, आपका जन्म तो अव हुआ है और सूर्य का जन्म तो वहुत पुराना है इस योग को आपने सूर्य से कहा था यह मैं कैसे जान सकता हूं।'

इस प्रश्न पर श्रीकृष्ण जी हंसकर बोले—

'हे मेरे प्रिय भक्त अर्जुन, मेरे और तुम्हारे बहुत जन्म हो चुके हैं किंतु तुम उन्हें नहीं जानते न ही जान सकते हो यहकेवल मैं जानता हूं मेरा जन्म साधारण प्राणियों जैसा नहीं है, मैं अविनाशी स्वरूप होने पर भी तथा सब भूत प्राणियों का ईश्वर होने पर भी प्रकृति को अधीन करके योग माया की शक्ति से

प्रकट होता हूं।'

'अर्जुन ! जब-जब भी धरती पर धर्म की हानि होती है और अधर्म फैलने लगता है तब-तब ही मैं जन्म लेता हूं। क्योंकि धर्मी पुरुषों का उद्धार करने के लिए और पापियों का नाश करने के लिए, तथा धर्म की रक्षा के लिए मैं हर युग में प्रकट होता हूं।'

'इसलिए अर्जुन मेरा जन्म और कर्म अलौकिक है। इससे जो पुरुष ईश्वर को तत्व से) जानता है वह शरीर को त्यागकर दुबारा जन्म नहीं लेता है।'

पहले भी राग, भय क्रोध से रहित बहुत से लोग मेरी शरण में आकर अपना जीवन सफल कर चुके हैं, उनका कल्याण मैंने इसलिए किया कि उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया था।

'जो मुझे जैसे याद करता है, मैं उसे वैसे ही याद करता हूं, इस रहस्य को जानकर ही बुद्धिमान प्राणी हर तरह से मेरे बताए हुए ज्ञान को प्राप्त करते हैं।'

जो मुझे तत्व से नहीं जानते ऐसे प्राणी इस संसार में कर्मों के फल को चाहते हुए देवताओं को पूजते हैं ऐसे लोगों के सभी मनोरथ पूरे होते हैं किंतु उन्हें मेरी प्राप्ति नहीं होती इसलिए तुम मेरे को ही याद रखो मेरी पूजा करो।'

'तत्व सर्वशक्तिमान परमात्मा अज अविनाशी।'

पांडवपुत्र गुण और कर्मों के विभाग से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शुद्र बनाए गए हैं उनका कर्ता भी मैं ही हूं क्योंकि हर प्राणी के कर्मों का फल उसे मिलता है जैसे भी कोई कर्म करता है मैं भाग्य में वह लिखता हूं इसलिए तुम पूर्वजों द्वारा सदा से किये हुए कर्म ही करो, परन्तु कर्म क्या है अकर्म क्या है ऐसे इस विषय

पर बुद्धिमान प्राणी भी उलझ से जाते हैं।'

'इसलिए मैं वह कर्म और कर्मों के तत्व को तुम्हें इस बारे में खुलकर बताऊंगा जिसको जानकर तुम इस संसार के मोह बंधनों से छुट जाओ।'

'कर्म का स्वरूप भी जानना और बुरे कर्मों का ज्ञान प्राप्त होना चाहिए तथा विषिद्ध कर्म के बारे में जानना चाहिए क्योंकि कर्म की गति गहन है।'

'जो प्राणी कर्म में अर्थात् अहंकार से दूर की हुई सारी चेष्टाओं में अकर्म अर्थात वास्तव में उनका न होना विन देखे और जो प्राणी अकर्म में भी अर्थात अज्ञानी प्राणियों द्वारा किए हुए सारी क्रियाओं के त्याग में भी कर्म को यानि त्याग रूप क्रियाओं को देखे वही बुद्धिमान होता है।'

'हे अर्जुन, जिसने सारे कार्य, कामना और संकल्प से दूर है, ऐसे अज्ञान रूप आग द्वारा भस्म हुए कर्मों वाले प्राणियों को ज्ञानी लोग भी पंडित कहते हैं।'

'जो पुरुष दुनिया से दूर ईश्वर की लग्न में लगा हुआ है उसी को अपना सम्पूर्ण जीवन समझता है, वह कर्मों के फलगंन अर्थात कर्तत्व अभिमान को त्यागकर कर्म के साथ अच्छी तरह बरताव करता हुआ भी कुछ भी नहीं करता है। जीत लिया है अन्त-करण और शरीर जिसने और सारी संभोग सामग्री त्याग दी है ऐसे प्राणी यदि शरीर सम्बन्धी कर्म को करते भी हैं तो पापी नहीं कहलाते।'

अपने आप जो कुछ प्राप्त होता है, जो कभी मिलता है उसी में सन्तुष्ट रहने वाले और ईर्ष्या जलन से दूर रहने वाले प्राणी

कर्मों की मार भी बांधते नहीं हैं, क्योंकि आशक्ति से रहित ज्ञान में डूबे हुए मन वाले यज्ञ के लिए आचरण करते हुएं युग पुरुषों के सारे कर्म नष्ट हो जाते हैं।

उन यज्ञ के लिए'आचरण करने वाले प्राणियों में से कोई तो इस भाव से यज्ञ करता है कि अर्पण अर्थात् स्त्रुवदिक भी ब्रह्मा हैं और हवन करने योग्य द्रव्य भी ब्रह्मा है, और उसी ब्रह्मा का रूप हवन कुंड भी भाग में हैं हवन सामग्री भी जब आग में डाली जाती है, वह ब्रह्मा ही है इसलिए ब्रह्मा रूप कर्म में समाधिस्थ हुए उस पुरुष द्वारा जो प्राप्त होने योग्य है, वह भी ब्रह्मा ही है।

और दूसरे योगी लोग देवताओं के पूजन रूप यज्ञ को ही अच्छी तरह से पूजते हैं और अन्य ज्ञान लोक पर ब्रह्मा ईश्वर रूपी आग में ही यज्ञ के द्वारा इसमें हवन करते हैं।

अन्य योगी लोग, भक्त इन्द्रियों का संयम तथा स्वाधीनता रूप आग में हवन करते हैं। यानि इन्द्रियों को रोककर अपने वस में कर लेते हैं और दूसरे योगी शब्दादिक विषयों को इन्द्रिय रूप आग में हवन करते हैं, यह इन्द्रियों को ग्रहण करते हुए भी भस्म कर देते हैं। अन्य योगीजन इन्द्रियों की चेष्टाओं और प्राणों के व्यापार को ज्ञान से प्रकाशित हुई, परमात्मा में स्थिति रूप योगा की आग में हवन करते हैं।

अन्य कई प्राणी ईश्वर अर्पण वुद्धि से लोक सेवा में द्रव्य लगाने वाले हैं, वैसे ही कई प्राणी सर्वधर्म पालन करने वाले और यज्ञ करने वाले हैं इनमें से कई ऐसे हैं जो कई प्रकार के यज्ञ करने वाले हैं, और दूसरे अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील प्राणी, भगवान की पूजा तथा शास्त्रों का अध्ययन करके ज्ञान के करने वाले हैं।

दूसरे योगीजन अपानवायु का हवन करते हैं वैसे अन्य कई योगी प्राणायाम करके परायण होते हैं। अन्य नियमित आहार करने वाले योगीजन प्राणों को प्राणों में ही हवन करते हैं इस प्रकार यज्ञों द्वारा नाश हो गया है पाप जिनका ऐसे सब ही प्राणी की विशेषता और फल को जानने वाले हैं।

हे पांडव पुत्र यज्ञो के परिणाम रूप ज्ञानामृत को भोगने वाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं और यज्ञ रहित पुरुषों को यह मनुष्य लोक भी सुख नहीं दे सकता फिर परलोक में वे कैसे सुख की आशा रख सकते हैं ऐसे बहुत प्रकार के यज्ञ वेदों में लिखे गए हैं उन सबके शरीर मन और इन्द्रियों को क्रिया द्वारा ही उत्पन्न होने वाले ज्ञान इस प्रकार तत्व से जानकर निष्काम कर्म योग द्वारा संसार बंधन से मुक्त हो जाये।

पाँडव पुत्र सांसारिक वस्तुओं से सिद्ध होने वाले यज्ञ से ज्ञान रूप यज्ञ सब प्रकार श्रेष्ठ है क्योंकि हे पार्थ सम्पूर्ण याज्ञ मात्र कर्म ज्ञान में शेष होते हैं अर्थात ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है इसलिए तत्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुप से भली प्रकार दण्डवत प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान वे मर्म को जानने वाले ज्ञानीजन तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे कि जिसको जानकर तुम इस प्रकार के मोह को प्राप्त नहीं होगे और हे पांडव वीर जब ज्ञान के द्वारा सर्वव्यापी अनन्त चेतन रूप हुआ अपने अन्तर्गत बुद्धि की शक्ति से सारे भूतों को देखोगे और उसके पश्चात मेरे में पूरे विश्व के ज्ञान को देखोगे यदि तुम सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाले हो, फिर ज्ञान को शक्ति से इन पापों से मुक्त हो सकते हो।

हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित आग सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर

देती है, वैसे ही ज्ञानरूपी आग शोर कर्मों को भस्म कर देती है। इसीलिए इस संसार में ज्ञान के सिवा ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो पवित्र कर सके, ज्ञान महाशक्ति है, इस ज्ञान को पाने के लिए तप, त्याग, योग, द्वारा अच्छी तरह शुद्धांतकरण से आत्मा में अनुभव होता है।

हे अर्जुन जितेन्द्रिय तत्पर हुआ श्रद्धावान प्राणी ज्ञान को प्राप्त होता है, ज्ञान को प्राप्त होकर ही मन को शांति मिलती है, ऐसे ही भगवत् विषयों को न जानने वाले तथा श्रद्धाहीन प्राणी परमार्थ से भ्रष्ट लोगों के लिए न तो सुख है और न ही शांति न ही परलोक है अर्थात लोक और परलोक दोनों ही उसके लिए भ्रष्ट हो जाते हैं।

हे अर्जुन ! समत्व बुद्धिरूप योग द्वारा भगवत अर्पण कर दिए हो जिसके सारे कर्म अज्ञान द्वारा नष्ट हो गए हों इनके विषय में तुम इतना ही सोच लो कि वे क्या कर सकते हैं। तुम ऐसे लोगों से युद्ध करने में संकोच क्यों करते हो। बुराई का विनाश करना तो ज्ञानी का कर्तव्य है।

उठो उर्जुन युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

मैं ही तुम्हारा कर्म हूं मैं ही तुम्हारा रक्षक हूं, तुम धर्म की रक्षा करो मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।

पाँचवां अध्याय

भगवान श्रीकृष्ण के मुख से यह ज्ञान वाणी सुन अर्जुन ने पूछा—

हे प्रभु ! आप कर्मो को सन्यास की और फिर निष्काम कर्म योग की प्रशंसा करते हैं। इसलिए इनमें से एक जो निश्चय किया हुआ कल्याणकारी है उसके बारे में मुझे बताओ।

देखो अर्जुन सर्व प्रथम तुम्हें कर्मो का सन्यास जिसे मन, इन्द्रियों और शरीर द्वारा होने वाले संपूर्ण कर्मों में कर्ता रन का त्याग और निष्काम कर्मयोग (समत्व बुद्धि से भगवत अर्थ कर्मो का करना) यह दोनों ही परम कल्याण के करने वाले हैं। परन्तु उन दोनों में से या कर्मो के सन्यास से निष्काम कर्म योग साधन में सुगम होने श्रेष्ठ हैं।

इसलिए जो प्राणो न किसी से बुरा करता है और नही किसी बुरे के पास जाता है, वह निष्काम कर्म योगी सदा सन्यास ही समझा जाता है। क्योंकि बुराइयों और पापों से मुक्त प्राणी सुख पूर्वक संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

हे पांडव पुत्र ऊपर कहे हुए सन्यास और निष्कर्म कर्म योग को मूर्ख लोग अलग-अलग फल वाले कहते हैं न कि पण्डित जन क्योंकि दोनों में से एक में अच्छी प्रकार स्थित हुआ प्राणी दोनों के फल रूप परमात्मा को प्राप्त होता है ज्ञान योगियों द्वारा जो परमधरम प्राप्त किया जाता है। निष्काम कर्म योग द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है।

इसलिए जो पुरुष ज्ञान योग और निष्काम योग का फल एक ही देखता है वह ही यथार्थ देखता है परन्तु हे वीर श्रेष्ठ निष्काम कर्मयोग विना सन्यास यर्थात मन इन्द्रियों और शरीर द्वारा होने वाले सारे कर्मों में कर्तापन का त्याग प्राप्त होना कठिन है और भगवत स्वरूप को मनन करने वाला निष्काम कर्म योगी ईश्वर को शीघ्र प्राप्त कर लेता है जिसने वश में शरीर

किया हुआ है ऐसे जितेन्द्रियों और विशुद्ध अन्त करण वाला एवं सारे प्राणियों के आत्म रूप परमात्मा में एकी भाव हुआ निष्कर्म कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिपायमान नहीं होता।

अर्जुन तत्व को जानने वाला सांख्य योगी तो देखता हुआ सुनता हुआ स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ भोजन करता हुआ बोलता हुआ त्याग करता हुआ ग्रहण करता हुआ आंखें झपकाता हुआ और कल्पना के सागर में डूबता हुआ भी सत्य इंद्रियां अपने-अपने अर्थ में प्रयोग में लाई जा रही है इस प्रकार समझता हुआ निःसन्देह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूं।

परन्तु।

हे अर्जुन देहाभिमानियों द्वारा ये साधन होना कठिन है और निष्काम कर्मयोग सुगम है क्योंकि जो पुरुष सत्य कर्मों को परमात्मा के अर्पण करके और आसक्त का त्याग करके कर्म करता है वही प्राणी पाप मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है इसलिए निष्काम कर्मयोगी सत्व संसार के सुखों को त्याग कर मन और आत्मा की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं। इसी से निष्काम कर्मयोग कर्मों के फल को परमेश्वर के अर्पण करके भगवत प्राप्त रूप शांति को प्राप्त करता है और सकामी पुरुष फल में आसक्त हुआ कामना के द्वारा बंध जाता है इसलिए निष्काम योग सबसे उत्तम है।

प्रिय अर्जुन, जिसके वस में अंतःकरण है ऐसा सांख्य योग का आचरण करने वाला पुरुष तो न संदेह न कर्त्ता हुआ और नहीं करवाता हुआ नौ द्वारों वाले शरीर रूप घर में सारे कर्मों को मन से त्याग कर आनन्द पूर्वक सच्चिदानन्द परमात्मा के स्वरूप में स्थिर रहता है परमेश्वर भी भूत प्राणियों के न कर्त्तापन को और न कर्मों को तथा न ही कर्मों कि फल से संयोग को

वास्तव में रचता है किन्तु परमात्मा के साकेस से प्रकृति ही वर्तती है अर्थात गुण ही गुण वर्त रहे हैं।

सर्वव्यापी ईश्वर ने किसी के पाप कर्म को और किसी के अच्छेकर्म को भी ग्रहण करता है किन्तु माया द्वारा ज्ञान ढका हुआ है इससे सव जीव मोहित हो रहे हैं परन्तु जिनका वह अंतःकरण का अज्ञान आत्म ज्ञान द्वारा नाश हो गया है उनका वह लान सूर्य के सदृश सच्चिदानन्द घन परमात्मा को प्रकाश में लाना है।

ऐसे वे ज्ञानी जन जिनकी विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते, चांडाल में भी समभाव से देखते ही होते हैं।

इसलिए जिनका मन समत्भाव में स्थिर है उन्होंने तो उसके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही संसार जीत लिया क्योंकि ईश्वर निर्दोष और सम है इससे संसार का स्वामी ईश्वर ही स्थित है।

जो प्राणी अपने प्रिय को पाकर खुश नहीं और अप्रिय को उसको प्राप्त होकर उद्वेगवान न हो ऐसा स्थिर बुद्धिसंशय रहित ब्रह्मवेता पुरुष ईश्वर में एकी या वैसे नित्य स्थित है।

वाहर के विषयों (सांसारिक भोग) में अशक्ति सहित अन्तःकरण वाला पुरुष अन्त करण में जो भगवत ध्यान जनित आनंद है उसको प्राप्त होता है और वह पुरुष सच्चिदानन्दघन पर ब्रह्म परमात्मा रूप योग में एकी भाव से स्थिति हुआ अक्षय आनन्द को प्राप्त करता है।

जो यह इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सव भोग हैं वे यद्यपि विषय पुरुषों को सुखरूपा मानते हैं तो

भी निःसंदेह दुःख ही देने वाले हैं और यदि अन्तः वाले अर्थात अनित्य हैं, इसलिए प्रिय अर्जुन बुद्धिमान विवेक प्राणी उत्तम नहीं रमता।

जो प्राणी शरीर के नाश होने से पहले ही काम और क्रोध से उत्पन्न हुए वेग को सहन करने में समर्थ है जिन्होंने काम क्रोध को जीत लिया है वही इस संसार में योग है और उन्होंने ही अपने आपको जीतकर ईश्वर को पा लिया है।

जो प्राणी निश्चय करके अन्तर आत्मा में ही सुख वाला है और आत्मा में ही आराम वाला है तथा जो आत्मा से ही ज्ञान वाला है, ऐसा प्राणी ईश्वर के साथ एकी भाव हुआ सांख्य योगी शांत ब्रह्म को प्राप्त होता है।

जिनके सारे पाप नाश हो गए हैं तथा वे ज्ञान पाकर निवृत हो गए हैं संशय जिनका और सम्पूर्ण भूत प्राणियों के हित में है रति जिनका एकाग्र हुआ है जिनका ज्ञान ईश्वर के ध्यान में लगा हुआ है ऐसे भद्र पुरुषों को ईश्वर प्राप्त होता है।

काम क्रोध से मुक्त जीते हुए चित वाले परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किए हुए ज्ञान पुरुषों के लिए सब ओर से ईश्वर की कृपा होती है ईश्वर ही उनकी रक्षा करता है।

हे अर्जुन बाहर के विषयो भोगों को न चिंतन करता हुआ बाहर ही त्याग कर नेत्रों की दृष्टि भृकुटी के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को समय करके जाती हुई है इन्द्रियाँ मन और बुद्धि जिनकी ऐसा जो पर-मेश्वर इच्छा डर क्रोध से रहित है वह सदा मुक्त ही है।

हे अर्जुन मेरा भक्त मेरे को यज्ञ और तपों का भोगने वाला

और सम्पूर्ण लोगों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा संपूर्ण भूत प्राणियों निस्वार्थ प्रेमी ऐसा तत्व से जानकर शांति को प्राप्त होता है।

और।

सच्चिदानन्द सम्पूर्ण शांत ब्रह्म के सिवाय उसकी दृष्टि में और कुछ भी नहीं रहता।

केवल वासुदेव ही वासुदेव ही रह जाता है।

हे मेरे प्रिय अर्जुन अब तुम भी इस माया मोह के जाल से बाहर निकालो यह तो जीवन के ऐसे अन्धेरे हैं जिन्हें केवल ज्ञान का प्रकाश ही मिटा सकता है।

छठा अध्याय

अनाश्रितः कर्म फल कार्यं करोति च।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्नं चाक्रिय ॥

फिर श्रीकृष्ण जी बोले, 'हे अर्जुन जो कर्म के फल को न चाहता हुआ करने योग्य कर्म करता है वह संन्यासी और योगी है और केवल आग का त्याग करने वाला सन्यासी योगी नहीं है।

और क्रियाओं को त्याग करने वाला सन्यासी भी योगी नहीं है।

इसलिए हे पांडव पुत्र जिसके सन्यास ऐसा कहते हैं उसी को तू योग जान क्योंकि संकल्पों को न त्यागने वाला कोई पुरुष योगी नहीं होता।

समत्व बुद्धिमान योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मानन शील पुरुरु के लिए योग की प्राप्ति में निष्काम भाव से कर्म करने हेतु कहा है और योगा रूढ़ पुरुष के लिए सर्व संकल्पों का अभाव कल्याण में हेतु कहा है।

जिस काम में न तो इन्द्रियों में आशक्त होता है तथा न कर्मों में ही आसक्त होता है उस काल में सर्व संकल्प का त्यागी पुरुष योगा रूढ़ कहा जाता है।

यह योग रूढ़ता कल्याण में हेतु कही जाती है। इसलिए प्राणी को चाहिए कि अपने द्वारा अपना संसार सागर से उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुंचाए क्योंकि यह जीव आत्मा आप ही अपनी मित्र है और यही प्राणी शत्रु भी है इससे बड़ा न तो कोई प्राणी का मित्र है और न ही शत्रु है उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है जिसने अपनी शक्ति से मन और शरीर जीता हुआ है शत्रु यह उस समय होता है जब आप मन शरीर इन्द्रियों पर विजयी नहीं हो सकते।

हे अर्जुन ! सर्दी-गर्मी और सुख-दुख में तथा मान और अप-मान में जिसके अन्तकरण की वृतियां अच्छी प्रकार शाँत हैं अर्थात विकार रहित हैं ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में, ईश्वर की शक्ति के सिवा और कुछ है ही नहीं यानी ईश्वर ही उस आत्मा में विराजमान है।

ज्ञानविज्ञान से तृप्त है अन्तकरण जिसका तथा विकार रहित है स्थिति जिसकी और अच्छी प्रकार जीती हुई हैं। इन्द्रियां जिसकी तथा समान हैं मिट्टी पत्थर सुवर्ण जिसके वह योग युक्त अर्थात भगवत की प्राप्ति वाला है ऐसा कहा जाता है।

जो प्राणी सबका हित करने वाला है जो शत्रु उदासीन

मध्यस्थ, द्वेषी, और वन्धुगणों में तथा धर्मात्माओं में और पापियों में भी विराजमान है, वह अति श्रेष्ठ है इसलिए उचित है कि जिसका मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, ऐसा वासना रहित और संग्ररहित योगी एकांत में वैठकर आबादी से दूर अपने मन को सच्चे हृदय से 'ईश्वर के ध्यान में लगाए।

युद्धभूमि में कुशा मृगछाला और वस्त्र है उपरापरि जिसके ऐसे अपने को न बहुत ऊंचा और न ही वहुत नीचा स्थिर स्थापन करके और उसके आसन पर वैठकर तथा मन को एकाग्र करके मन और इन्द्रियों की क्रियाओं को वस में करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग अभ्यास उसकी विधि इस प्रकार है कि शरीर सिर और ग्रीवा को समान और अचल धारण किये हुए दृढ़ होकर अपनी नासिका के अग्रभाग को देखकर अन्य दिशाओं को देखता हुआ, ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहता हुआ, भयरहित शुद्ध मन से सावधान होकर मन को वस में करके मेरे में लगे हुए चित्त वाला और मेरे वरायण हुआ स्थित हो।

'इसके प्रकार आत्मा को निरन्तर परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ, स्वाधीन मन वाला योगी, मेरे अन्दर की मन की शांति को पा लेता है।'

परन्तु हे अर्जुन ! यह योग, न तो बहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का तथा न अतिशयन करने के स्वभाव वाले का और न अत्यन्त जागने वाले का ही सिद्ध होता है। यह दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथा-योग्य आहार और विहार करने वालों का तथा कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य शयन करने तथा

जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

इस प्रकार योग के अभ्यास से पूरी तरह बस में किया हुआ मन जिस काल में परमात्मा में ही भली प्रकार स्थित हो जाता है। उस काल में सम्पूर्ण कामनाओं से स्पृहारहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहीं है, वैसे ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए मन को कहा गया है। हे अर्जुन! जिस अवस्था में योगी के अभ्यास से निरुद्ध हुआ दिल उपराम हो जाता है और जिस अवस्थाओं में परमेश्वर व ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा को साक्षात करता हुआ जगत का स्वामी ईश्वर भी सन्तुष्ट होता है।

तथा इन्द्रियों से अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित हुआ यह योगी भगवत स्वरूप से नहीं चलायमान होता है।

और परमेश्वर की प्राप्ति रूप जिस लय को प्राप्त होता है, उससे बढ़कर कोई लाभ नहीं मानता है और भगवत स्वरूप जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःख से भी प्रभावित नहीं होता, जो दुःख से भरे संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसे यह जान लेना चाहिए कि इसे सच्चे मन और पूर्ण लगन से ही करना उचित है।

'इसलिए प्राणी को चाहिए कि संकल्प से पैदा होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं को निःस्पर्शयता से अर्थात् वासना और आसक्ति सहित त्यागकर और मन के द्वारा सभी इन्द्रियों को पूर्णरूप से बस में करे। क्रम-क्रम से अभ्यास प्राप्त करता हुआ उपरामता को प्राप्त करे तथा शांत बुद्धि से अपने मन को ईश्वर

लगाए, बस ईश्वर के सिवा और किसी का ध्यान न करे।

परन्तु !

जिसका मन बस में नहीं हुआ, उसको चाहिए कि यह स्थिर न रहने वाला और चंचल मन जिस प्रकार से सांसारिक पदार्थों में विचरता है उसे उससे रोककर बार-बार ईश्वर को याद करे, क्योंकि जिसका मन अच्छी तरह से शांत हो गया, उसे ईश्वर से मिलने में कोई कठिनाई नहीं ईश्वर ही उस पर कृपादृष्टि करता है, वही योगी है उसे ही ज्ञान प्राप्त होगा, जिसके पास ज्ञान है। उसी के पास भगवान है, वही जीवन के सच्चे आनन्द को प्राप्त करता है।

हे अर्जुन ! सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थित रूप योग से युक्त हुए आत्मा वाला तथा सबहैं समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में वर्फ में पानी के अन्दर व्यापक देखता है, और सारे भूतों की आत्मा में देखता है अर्थात् जैसे-जैसे स्वप्न से जागा हुआ प्राणी स्वप्न के संसार को अपने अन्दर देखता है, देखता है वैसे ही प्राणी सम्पूर्ण भूतों को अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्मा के अन्तर्गत संकल्प के आधार पर देखता है।

'जो प्राणी भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता हूं और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता, क्योंकि वह मेरे में एकभाव से स्थित है।'

इस तरह से जो पुरुष एकीभाव में स्थित हुआ सम्पूर्ण भूतों में आत्मरूप से स्थित मुझ सच्चदानन्दघन वासुदेव को भजता है, वही योगी सब स्थानों पर रहता हुआ भी मेरे मन में रहता है, क्योंकि उसके अनुभव में मेरे सिवा और कुछ है ही नहीं।

हे अर्जुन ! जो योगी अपनी सादृश्यता से (जैसे मनुष्य अपने मस्तक हाथ पाँव और अन्य अंगों से भिन्न-भिन्न प्रकार का बरताव करता है (सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है, सुख और दुख सवमें सम देखता है, वह योगी सबसे महान और श्रेष्ठ माना गया है।)

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण जी के मुख से यह ज्ञान सुनकर अर्जुन बोला—हे मधुसूदन ! जो यह ध्यान योग आपने समत्व-भाव से कहा है, इसको मैं मन के चंचल होने से बहुत काल तक ठहरने वाली स्थिति को नहीं देखता हूं, क्योंकि हे भगवन—यह मन बड़ा ही चंचल है और प्रमथन स्वभाव वाला है, तथा बहुत दृड़ और शक्तिशाली है, इसलिए इसे बस में करना हवा की भाँति बहुत कठिन मानता हूं।

अर्जुन की वात सुनकर श्रीकृष्ण बोले—

हे महावीर इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह मन बहुत चंचल और बड़ी कठिनाई से वस में आनें वाला है, परन्तु अपने आप पर काबू पाने मन को दृढ़ करने और योग साधना करने से वैराग्य से वस में होता है. इसलिए इसको वस में करना चाहिए क्योंकि जिस प्राणी का मन वस में नहीं उसे योग प्राप्त होना कठिन है और स्वाधीन मन वाले प्रयत्नशील पुरुषों द्वारा साधन करने से प्राप्त होना सहज है, यह मेरा मत है।

हे-भगवन मेरा मनयोग से चलायमान हो गया है। जिसका मन ऐसा शिथिल यन्त्र वाला श्रद्धायुक्त पुरुष योग की सिद्धि को अर्थात् भगवत साक्षात्कारता को न प्राप्त होकर किस गति को

प्राप्त होता है ?

क्या यह भगवद् प्राप्ति के मार्ग में मोहित हुआ वेसहारा पुरुष घिरे हुए बादलों की भांति दोनों ओर से अर्थात ईश्वर को प्राप्त करने के लिए सांसारिक योग से भ्रष्ट नहीं हो जाता है। हे भगवन मेरे इस संशय को सम्पूर्णता से छदन करने के लिए आप ही योग्य हैं। क्योंकि आपके सिवा दूसरा कोई इस संशय को छेदने वाला मिलना सम्भव नहीं है।

हे अर्जुन ! मैंने तुम्हारे सारे प्रश्न सुन लिए अब उनका उत्तर सुनो।

उस पुरुष का न तो इस लोक में और न ही परलोक में नाश होता है। क्योंकि कोई अच्छे काम करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। किंतु वह योग भ्रष्ट प्राणी, पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त होकर उनमें बहुत वर्ष तक रहने के पश्चात फिर किसी आचरण वाले मनुष्य के घर में जन्म लेता है अर्थात किसी योगी के घर में जन्म लेता है। परन्तु इस बार यह जन्म है, सो संसार में निःसन्देह अति दुर्लभ है।

वह प्राणी वहां उस पहले के शरीर में साधन किए हुए बुद्धि के संयोग में अर्थात समत्व बुद्धियोग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है। उस प्रभाव से फिर भलीभांति भगवत प्राप्ति के निमित्त यह करता है।

वह (श्रीमानों के घर में जन्म लेने वाला योगभ्रष्ट प्राणी) विषयों के बस में हुआ भी। उस पहले के अभ्यास से ही निःसंदेह भगवान की ओर आकर्षित किया जाता है। तथा समत्वबुद्धि रूपयोग का जिज्ञासु भी वेद में कहे हुए समान कर्मों के फल को उल्लंघन कर जाता है जबकि इस प्रकार के मन्द प्रयत्न करने

वाला योगी भी परम गति को प्राप्त हो जाता है।

योगा स्वरूप को जानने की इच्छा करने वाला भी केवल योग को ही नहीं पाता है। अपितु वेदोक्त कर्मफल ये अधिक फल पाकर मुक्त हो जाता है जो योगी इस प्रकार यत्न करता रहता है। उसके पाप दूर हो जाते हैं और वह योग की सिद्धि पाकर परमगति को पाता है।

हे अर्जुन ! तपस्वियों से कर्मनिष्ठों से ज्ञानियों से योग ही श्रेष्ठ होता है।

इसलिए अर्जुन तुम योगी हो जाओ।

और

श्रद्धापूर्वक मुझमें मन लगाओ।

जो मुझे याद करता है।

जो मेरा भजन करता है।

जो हर कार्य आरम्भ करने से पूर्व सच्चे मन से मुझे अर्थात ईश्वर को याद करता है।

वह सम्पूर्ण योगियों से श्रेष्ठ है उससे प्रिय मुझे इस संसार में और कोई नहीं।

सातवां अध्याय

हे पांडव पुत्र महाबलि अर्जुन तुम अपना मन मुझमें ही लगाओ और मेरा ही सहारा लेकर जिस प्रकार से संशय रहित मुझको पूर्ण रीति से जानोगे, सो मैं कहता हूं, हे पार्थ मैं तुम्हें अब सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान सुनाता हूं, जो इस ज्ञान को एक बार

जाना जाता है उसे फिर कुछ भी जानने की जरूरत नहीं रहती।

'हजारों प्राणियों में से कोई एक ही ऐसा होता है, जो आत्म ज्ञान जानने के लिए यत्न करता है और इस यत्न करने वालों में से कोई ही मुझे जान पाता है, अब सुनो—

पृथ्वी, जल, तेज वायु आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार की भिन्न प्रकृति हैं इस सत्य को जानकर ही अर्थात चेतन प्रकृति जानकर ही सम्पूर्ण जगत का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

हे अर्जुन ! तुम ऐसा समझो कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों में ही पैदा होने वाले हैं और मैं इस सम्पूर्ण संसार को पैदा करने वाला और प्रलय रूप हूं। इसलिए मेरे सिवा इस संसार में और कोई कंचन मात्र भी वस्तु नहीं है। यह सारा संसार सूत्र मणियों के अन्दर मेरे साथ ही गुथा हुआ है।

हे पांडव पुत्र ! मैं जल में रस हूं तथा चंद्रमा और सूर्य में प्रकाश हूं। और सारे वेदों में ओंकार हूं, तथा आकाश में शब्द और मानवों में मानवता हूं, पृथ्वी पर पवित्रगन्ध और आग में तेज हूं, सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन हूं, अर्थात जिसमें वे जीते हैं। वह मैं हूं। मैं ही भक्तों की भक्ति हूं। मैं ही तपस्वियों की तपस्या हूं।

'इसलिए प्रिय अर्जुन तुम सम्पूर्ण भूतों का सनातन कारण मेरे को ही जानो।'

'मैं बुद्धिमानों की बुद्धि हूं।'

'तेजस्वियों का तेज हूं।'

मैं बलवानों की आसक्ति और कामनाओं से रहित अर्थात

सामर्थ्य हूं और सब भूतों में धर्म के अनुकूल यानी शास्त्रों अनुसार काम हूं।

'और भी जो महत्व गुण से पैदा होने वाले भाव हैं, यह मेरे से ही होते हैं, ऐसा जान लो परन्तु वास्तव में मैं उनमें वे मुझमें नहीं हैं।'

गुणों का कार्यरूप सात्विक राजस और तामस इन ती प्रकार के भावों से अर्थात राग द्वेषादि विकारों से और सम्ब विषयों से यह सारा संसार मोहित हो रहा है। इसलिए तीनों गणों से दूर मुझ अविनाशी को तत्व से नहीं जानता।

क्योंकि।

यह अलौकिक अर्थात अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी यो माया है बड़ी ही विचित्र है, परन्तु जो प्राणी मेरे ही नाम माला हर समय जपते हैं। मेरा भजन करते हैं वे माया के ज को पार कर जाते हैं। इन बन्धनों को तोड़ देते हैं, संसार माय जाल से मुक्त हो जाते हैं।

ऐसा सरल उपाय होने भी माया द्वारा हारे हुए ज्ञान वा और आसुरी स्वभाव वाले तथा मानवता से गिरे हुए बुरे करने वाले प्राणी लोग तो मेरा नाम नहीं लेते, मेरी पूजा न करते, यदि वे भूलकर ऐसा करते भी हैं, तो मैं उन पापी लो से दूर रहता हूं और मृत्यु के पश्चात उन्हें नर्क दण्ड मिलता है।

मेरे प्रिय अर्जुन, तुम मेरे भक्त हो, उत्तम कर्म वाले वीर तुम्हें मुझ पर विश्वास है मैं केवल अपने भक्तों का दास हूं लोग सुबह उठकर मेरा भजन करते हैं, मैं सदा उनके हृदय आकर वसता हूं। मुझे अपने भक्तों से प्रेम है।

यद्यपि यह सत्य ही उदार है। यानी श्रद्धा से मेरे भजन को करते हैं। मेरा प्रेम से पूजन करते हैं, इन्हें मैं उत्तम मानता हूं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा रूप ही होते हैं, ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह स्थिर बुद्धि ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति स्वरूप मेरे में ही स्थित है।

जो वहुत जन्मों के अन्त में तत्व ज्ञान भी प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है, यानी कि इस संसार में वासुदेव के सिवा और कुछ नहीं है, इसलिए जो मेरी पूजा करता है, सच्चे हृदय से मुझे याद करता है वह ही महात्मा है।

हे अर्जुन ! जो विषयासाक्त पुरुष हैं, वे तो अपने स्वभाव से प्रेरे हुए तथा उन भोगों की कमान द्वारा ज्ञान भ्रष्ट हुए, उन नियमों को धारण करके अर्थात् जिस-जिस देवता की पूजा के लिए जो, जो भी नियम इस संसार में चल रहे हैं। उन नियमों को अपनाकर (धारण करके) अन्य देवताओं की पूजा करते हैं, और जो-जो प्रभु भक्त जिस-जिस देवता को मन से पूजना चाहता है। उन सब भक्तों के मन में उसी देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हू।

वे पुरुष उस श्रद्धा से युक्त हुए, उन देवताओं के पूजन को चेष्टा करते हैं और उन देवताओं से मेरे ही द्वारा विधान किये हुए उन इच्छित भोगों को निःसदेह प्राप्त करते हैं।

परन्तु !

उन अल्प बुद्धि वालों का वह फल नाशवान है, तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को पा लेते हैं, और मेरे भक्तजन मुझे जैसे भी याद करें, जैसे भी मेरी पूजा करें। शेष में मेरे को ही पा लेते हैं।

ऐसा होनें पर भी सब प्राणी मेरा भजन नहीं करते इस कारण यह है कि बुद्धिहीन, मंदबुद्धि प्राणी यह नहीं जानते कि ही सर्वश्रेष्ठ हूं, मेरे से उत्तम और कुछ नहीं है, मैं ही अविना हूं। मैं अपनी माया से प्रकट होता हूं, सीधे प्रभाव को तंत्र से जानते हुए मन इन्द्रियों से दूर, सच्चिादनन्दघन, परमात्मा मनुष्य की भांति जन्माकर व्यक्ति भाव को प्राप्त हुआ मा हैं।

अपनी योगमाया से छुपा हुआ मैं सबके सामने नहीं आ हूं।

इसलिए यह अज्ञानी प्राणी मुझे जन्म रहित अविनाशी प मात्मा को तत्व से नहीं जानता है और वह मुझे जन्मने म वाला समझता है।

हे अर्जुन ! अतीत में धरे और वर्तमान में स्थित तथा भवि में होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूं, परन्तु मेरे को श्रद्धा भक्ति रहित नहीं जानता, क्योंकि हे भारतवंशी अ संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख-दुःख आदि मोह डूबे हुए प्राणी, अति अज्ञानता के अन्धेरों में भटक रहे परन्तु निष्पाप भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाले पुरुषों का काप नष्ट हो गया है। वे लोग शांति मन से इस म जाल से निकलकर मोह मुक्त हो गए। जिनके हृदय में दृढ़ता वही मुझे भेजते हैं।

जो मेरी शरण होकर जीवन मृत्यु के बंधनों से छूटना चा हैं, वे प्राणी ब्रह्मा को तथा सम्पूर्ण अध्यात्म को और सम्पूर्ण को जानते हैं, जो प्राणी अधिभूत और अधिदैव के सहित अ जानते हैं, यानी सबका आत्मारूप मेरे को जानते हैं, अर्थात्

वाल, धूप, पानी और बर्फ यह सब जलरूप हैं, वैसे ही अधिदैव और विधि यज्ञ आदि सब कुछ वासुदेवस्वरूप है, ऐसा जो जानते हैं वे अन्तकाल में मुझे ही जानते हैं।

आठवां अध्याय

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण जी के पवित्र मुख से ज्ञान की बातें सुनकर अर्जुन के चेहरे के भाव बदल रहे थे, अब पहले वाली क्रूरता उसके मुंह पर नहीं थी, उसे जैसे ज्ञान प्राप्त हो रहा था, वैसे-वैसे उसका अशांत मन शांति का अनुभव कर रहा था; तभी अर्जुन कृष्ण जी के पास बैठा बोला—

'हे भगवन्! जिस पुरुषोत्तम का आपने वर्णन किया है, वह ब्रह्मा क्या है? अध्यात्म क्या है, कर्म क्या है और अधिभूत नामसे क्या कहा गया है। हे मधसूदन, अध यज्ञ कौन है और वह इस शरीर में कैसे हैं?'

और युक्त मन वाले प्राणियों द्वारा अन्त समय में आप किस प्रकार जानने में आते हो?

अर्जुन के मुख से यह प्रश्न सुनकर श्री कृष्ण जी हंसते हुए बोले—

'हे अर्जुन! परम अक्षर, जो कभी नाश नहीं होता, इसे ही आदि ब्रह्मा ईश्वर कहते हैं, परमात्मा ही ब्रह्मा है और अपना स्वरूप ज्ञानी जीवात्मा अध्यात्मक नाम से कहा जाता है तथा भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला शास्त्र विहित, यज्ञ, दान

और धूप, हवन सामग्री आदि निमित जो द्रव्यादिकों का त्याग है वह कर्म नाम से कहा गया है, उत्पति विनाश धर्म वाले सब पदार्थ अधिभूत हैं और हिरण्यम पुरुष आदि अधिदैव हैं और देह धारियों में सबसे श्रेष्ठ अर्जुन इस शरीर में वासुदेव ही विष्णु रूप से अधि यज्ञ है।

और जो प्राणी अन्तकाल में मेरे को स्मरण करता है और मुझे याद करते हुए अपना शरीरत्याग देता है, वही मेरे साक्षात रूप को प्राप्त होता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

कारण सुन अर्जुन, यह प्राणी अन्तकाल में जिस-जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग देता है, उसको ही प्राप्त होता है, किन्तु सदा उसकी ही चिन्ता करता हुआ, क्योंकि सदा जिस भाव का चिंतन करता है, अन्तःकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है।

'इसलिए पांडवपुत्र वीर तुम हर समय में निरन्तर मेरा स्मरण करो और युद्ध भी करो, क्योंकि पापके विरुद्ध लड़ना अधर्मी का नाश करना यह मेरा कर्त्तव्य है, अब इस कर्त्तव्य को मैं तुम्हें सौंप रहा हूं, यदि तुम अधर्म का नाश करोगे तो इससे मेरा मन खुश होगा।'

'हे वीर! यह नियम है कि ईश्वर ध्यान के अभ्यास रूप योग से युक्त अन्य और किसी ओर न जाने वाले चित को निरन्तर चिंतन करता हुआ पुरुष परम प्रकाश रूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है इससे जो पुरुष सर्वज्ञ अनादिसब प्राणियों के शुभ और अशुभ कर्म अनुसार शासन करने वाला सूक्ष्म से अति सूक्ष्म सबके धारण पोषण करने वाले अचिन्त्य स्वरूप सूर्य से सदृश, नित्य चेतन प्रकाश रूप, रूप इस संसार के

स्वामी त्रिलोकीनाथ ईश्वर का स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप परमात्मा को पा लेता है।

'हे अर्जुन! वेद को जानने वाले विद्वान जिस ईश्वर को ओंकारनाम से याद करते हैं और आसक्ति रहित यत्नशील, महात्मा जन जिसमें प्रवेश करते हैं, तथा जिस ईश्वर को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस परम पद को तुम्हारे लिए संक्षेप में कहूंगा।'

ध्यान से सुनो कर्मवीर—सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर यानी अपने मन को संसार के मोह जाल से हटाकर अपने प्राणों को मस्तक में स्थापना करके, योग धारणा में खोया, जो प्राणी ओम ऐसे इस अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति प्राप्त करता है, जीवन-मरण से मुक्त हो जाता है।

'हे अर्जुन! जो पुरुष मेरे में अनन्यचित्त से स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरे को याद करता है, मेरी पूजा करता है, ऐसे भक्त के लिए तो मैं स्वयं हाजिर होता हूं, मैं स्वयं उसकी इच्छाओं का ख्याल करता हूं।'

वे परमसिद्धि को प्राप्त हुए महात्माजन मेरे को प्राप्त होकर फिर इस दुःख भरे संसार में पूर्ण जन्म नहीं लेते हैं।

क्योंकि ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक पुनरावृत्ति स्वभाव वाले यानी जिनको प्राप्त होकर पीछे संसार में आना पड़े, ऐसे हैं, परन्तु हे कुन्ती पुत्र, मेरे को पाकर उनका पूर्नजन्म नहीं होता है, क्योंकि मैं कालतीत हूं और यह सब ब्रह्मादिकों के लोककाल करके अवधि वाले होने से अनित्य हैं।

'प्रिय अर्जुन ब्रह्मा जी एक रित हैं, उसको हजार चौकड़ी

युग तक अवधि वाला और रात्रि को भी हाजिर चौकड़ी युग त अवधि वाले जो पुरुष तत्व से जानते हैं अर्थात् काल करके अव वाला होने से ब्रह्मलोक भी अनित्य जानते हैं। वे योगी जन का के तत्व को जानने वाले हैं इसलिए वे यह भी जानते हैं कि संपू दृश्य मात्र भूतगण ब्रह्मलोक दिन के प्रवेश काल में अव्यक्त अर्थात ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रा के प्रवेश काल में अव्यक्त नाम ब्रह्मा के सूम्म शरीर में ही ल होते हैं।'

'वह ही यह भूतमुदाय उत्पन्न होहो-कर प्रकृति के वश हुआ रात्रि को प्रवेश काल में लक्ष्य होता है और दिन के प्रवे काल में फिर पैदा होता है।' 'हे अर्जुन! इस प्रकार से ब्रह्म भी शांत हो जाता है, परन्तु इस अव्यक्त से भी अति दूर दूसर विलक्ष जो सनातन अव्यक्त भाव है वह सच्चिदानन्द घन पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर नष्ट नहीं होता जो वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया उस ही अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परम-गति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्त भाव को पाकर प्राणी पीछे नहीं होते हैं वह मेरा परम धरम है।'

हे अर्जुन जिस ईश्वर के अन्तंगत सर्वभूत है जिस ईश्वर से यह सब जगत परिपूर्ण है वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।'

'प्रिय अर्जुन जिस काल में शरीर त्याग कर गये हुए योगी गण पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी पा लेते हैं उस काल को अर्थात मार्ग को कहूंगा।'

उन्हीं प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में ज्योतिमय अग्नि अभिमानी देवता है और दिन का अभिमानी देवता है तथा शुक्ल

पक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छः महीनें का अभिमानी देवता है उस मार्ग में मरे हुए ब्रह्मवेत्ता अर्थात परमेश्वर की उपासना से परमेश्वर परोक्ष भाव से जानने वाले योगी जन उपरोक्त देवताओं क्रम से ले गए हुए ब्रह्मा को प्र प्त होते हैं।'

जिस मार्ग में घूमा भिवानी देवता है और रात्रि अभिमानी देवता है तथा कृष्ण पक्ष का अभिमानी देवता है और दक्षिणायन के छः मास का अभिमानी देवता है, उलझन मार्ग में मरने वाला प्राणी सकाम कर्मयोगी उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गया हुआ चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने शुभकर्मों का फल भोगकर पीछे आता है।

क्योंकि जगत के यह दो प्रकार के शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये हैं। इसमें एक के द्वारा गया हुआ पीछे आने वाली परमगति को प्राप्त होता है। और दूसरे द्वारा गया हुआ पीछे आता है, अर्थात् जन्म मृत्यु चक्र में फंस जाता है।

हे अर्जुन ! इन दोनों मार्गों को तत्व से जानता हुआ कोई भी योगी मोहित नहीं होता है, अर्थात् फिर वह निष्काम भाव से साधन करता है। कामनाओं में नहीं फंसता, इस कारण हे अर्जुन !

तुम हर काल में समस्त बुद्धिरूप योग से युक्त हो अर्थात् निरन्तर मेरी प्राप्ति के लिए साधनकरने वाले हो, क्योंकि योगी लोक रहस्य को तत्व से जानकर वेदों को पढ़ने में तथा यज्ञ तप और दान आदि करने में जो पुण्यफल कहा है उस सबको निःसंदेह उल्लंघन कर जाता है और सनातन पद को प्राप्त करता है।

नवां अध्याय

उसके पश्चात् श्रीकृष्ण जी बोले—

हे अर्जुन ! तुम दोषी नजरों से बचे हुए भक्त के लिए इस परम गोपनीय ज्ञान को रहस्य के साथ कहूंगा कि जिसको जान कर तुम इस दुःखों से भरे संसार से मुक्त हो जाओगे।

यह ज्ञान सब विद्याओं का राजा तथा गोपियों का भी राजा एवं अतिपवित्र, उत्तम प्रत्यक्षफल वाला औरधर्मयुक्त है, साधन करने को बड़ा सुगम और अविनाशी है।

हे वीर, इस तत्वज्ञान रूप में श्रद्धारहित पुरुष मेरे को न प्राप्त होकर मृत्युरूपसंसार चक्र में भ्रमण करते हैं, मुझे सच्चदा-नन्दघन परमात्मा से यह जगत जल से बर्फ के सदृश परिपूर्ण है, और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्प के आधार स्थित है, इसलिए वास्तव में उनमें स्थित नहीं हूं और वे सब भूत मेरे में स्थित नहीं हैं, किन्तु मेरी योगमाया के प्रभाव को देख कि भूतों का धारण पोषण करने वाला और भूतों को उत्पन्न करने वाली क्यों मेरी आत्मा वास्तव में इन मूर्तियों में स्थित नहीं है, क्योंकि जैसे आकाश में स्थित उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा ही आकाश में स्थित हैं, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पत्ति वाले होने से सम्पूर्ण भूत मेरे में स्थित है, ऐसे ही जानो।

हे अर्जुन ! प्रलयकाल में सारे प्राणी मेरी प्रकृति में लीन हो जाते हैं और उनको मैं अल्प के आदि में फिर छोड़ देता हूं, मैं

अपनी प्रकृति का सहारा लेकर अपने कारण आधीन मानव जाति को नष्ट करके बार-बार बनाता हूं।

हे पाँडव पुत्र, मं इस सृष्टि के रचनाकर्म में आसक्त हूं, मैं ही अध्यक्ष हूं, मेरी इसी अध्यक्षता में ही प्रकृति चराचर प्राणिमात्र को बनाती है, इसी कारण इस संसार का परिवर्तनहोता रहता है, हे अजु न मूढ़ मनुष्य मेरे सर्वभूत महेश्वर परम भाव को नहीं जानते हैं, इसी से जो मैंने मनुष्य रूप धारण किया है। उसकी अवज्ञा करते हैं। यह मूढ़ मनुष्य इसीलिए मेरा अनादर करते हैं कि इनकी आशा फलवती नहीं है, वह जो कुछ भले कर्मदान पुण्य आदि करते हैं, सब निष्फल हैं।

'संसारिक चिन्ताओं से इनका चित्ताविक्षप्त रहता है और वे राक्षसी तथा आसुरी प्रकृति का आसरा चाहते हैं, जो केवल मोह को ही पैदा करती है।

प्रिय अर्जुन! देवी प्रकृति मां का आसरा रखने वाले महात्मा जन तो मुझे सब जीवों का आदिरूप अविनाशी जानकर सब ओर से चिन्तामुक्त होकर दृढ़ निश्चय से मेरी ही उपासना करते हैं। मुझ पर ही विश्वास करके मुझे प्रणाम करते हैं, ऐसे तो करोड़ों प्राणी हैं, जो मेरा ही नाम जपकर अपना जीवन सुखी बनाते हैं।

पांडवपुत्र, मैं प्रकृति भी हूं पितरों का सुधा भी हूं, अनादि औषध भी हूं, मंत्र भी हूं हवन की सामग्री भी हूं, हवन की आग भी मैं ही हूं, हवन की आहुति भी मैं ही हूं, इस सम्पूर्ण जगत का पिता भी मैं हूं और मां भी हूं। मैं ओंकार हूं। मैं चारों वेद हूं, मैं ही इस सारे जगत की गति हूं, सबका स्वामी हूं, सम्पूर्ण कर्मों का साक्षी हूं, सबका निवास मुझमें है, सबकी उत्पत्ति हूं, सबकी शरण हूं, सबका हितकारी हूं बीज रूप हूं, अविनाशी हूं, सूर्य

रूप धारण किये हुए मैं ही विश्व को अग्नि देकर जीवित रखता हूं, मैं ही जल बरसाता हूं, जीवन भी मैं हूं और मृत्यु भी मैं हूं, जो मानव मेरी पूजा करके स्वर्गलोक में जाने की आशा रखते हैं, वे पुण्य स्वरूप इन्द्र लोक में पहुंच कर स्वर्ग में बसकर दिव्य भोगों का भोग करते हैं, फिर अपने पुण्य क्षीण होने पर इस मानव संसार में जन्म लेते हैं, वेदोक्त यज्ञादि कर्मों के करने वाले अपनी कामना के कारण कभी स्वर्ग में जाते हैं, कभी संसार में आते हैं, इस प्रकार वे आवागमन में फंसे रहते हैं।

जो भक्त, मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य योनियों को मैं इस संसार, धन, जन, पुत्र, पौत्रादि देकर उनकी रक्षा करता हूं, और फिर आवागमन से उन्हें मुक्त कर देता हूं। हे पांडव वीर! अन्य देवताओं के भक्त वर्ग जो उनमें श्रद्धा प्रकट करके, उनकी उपासना करते हैं, वे मेरी विधीहीन पूजा है, जो मुझको ऐसा प्रभु ईश्वर नहीं जानते हैं वे कभी आवागमन से नहीं छूटते हैं।

देवताओं को पूजने वाले देवगति को प्राप्त होते हैं। पितरों को पूजने वाले पितरलोक जाते हैं, मृतों को पूजने वाले मृत्युलोक जाते हैं, मुझको पूजने वाले मेरे परमानन्द स्वरूप अचलपद पाते हैं, जो कोई श्रद्धा से मुझ पर फूल चढ़ाकर मेरी उपासना करता है, उसकी दी हुई वस्तु को मैं खुशी से स्वीकार करता हूं।

हे अर्जुन! जो कुछ तुम करते हो देते हो, तपस्या करते हो, वह मुझे अर्पण करो। ऐसा करने से कर्म बंधन रूप शुभ. अशुभ फलों से बच जाओगे और संन्यास योग में भक्त होकर भक्ति की शक्ति से मुझको अवश्य पाओगे।

मैं संपूर्ण प्राणियों में समानरूप हूं, न कोई मेरा शत्रु है और

न ही कोई मेरा मित्र है, वह मुझमें है, मैं उसमें हूं।

हे पार्थ कोई कैसा भी पापात्मा क्यों न हो चाहे क्षत्रिय हो शूद्र, वैश्य, यदि मेरा आसरा ले तो वह उत्तम गति को प्राप्त होता है, और फिर पुणयात्मा ब्राह्मण और भक्त राजर्षि इनका तो कहना ही क्या है इसलिए हे अर्जुन!

'ओ३म् नमोः वासुदेवायः।

यह मेरा भजन स्मरण करें, फिर मेरा साथ ऐसा मिलेगा, जैसे पानी के साथ पानी मिल जाता है, इसके साथ ही

'ओ३म् नमो! नारायण'

यह कहो।

ग्यारहवां अध्याय

भगवान् की विभूतियो के वर्णन को सुनकर अर्जुन ने कहा— कि हे प्रभु! त्रिलोकीनाथ आपने मेरे ऊपर अनुग्रह करके जो ज्ञान मुझे दिया है इससे मेरा सारा ही मोह दूर हो गया है। प्रभु मैंने प्राणियों की उत्पत्ति और प्रलय का वृतांत आपके मुखसे विस्तार पूर्वक सुना और आपका लक्ष्य महात्मय भी सुना।

अब आप मुझे ज्ञान, शक्ति, वल, ऐश्वर्य, वीर और तेज इन छः गुणों से युक्त अपने रूप के दर्शत करवा दीजिए, यही मेरी इच्छा है, यदि आप यह समझतें हैं कि मैं आपका यह रूप देख सकता हूं, तो योगेश्वर? तो आप एक बार मुझे अपने अविनाशी रूप को दिखायें।

अर्जुन की बात सुन, श्रीकृष्ण बोले—

हे अर्जुन ! तुम मेरे सैंकड़ों हजारों रूपों को देखो, यह मेरे अनेक प्रकार के दिव्य रूप हैं, यह सब अनेक वर्ण और अनेक प्रकृतियों के हैं परन्तु मेरे शरीर में सूर्य, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार और मरूदगणों के देव और उन आश्चर्य युक्त बातों को देखो जो तुमने आगे कभी नहीं देखी हैं, हे पांडवपुत्र, मेरे इस शरीर में चराचर सारे विश्व को एक ही स्थान पर इकट्ठे देख लो और भी जिन चीजों को तुम देखना चाहते हो, वह सब देख लो तुम अपने इन नेत्रों से मुझे देख नहीं सकोगे, इसलिए मैं तुम्हें दिव्य नेत्र से ही तुय मेरा विराट रूप देख सकोगे।

बस इतनी बात कहते ही भगवान, श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सामने अपना विराट रूप प्रकट किया, उसमें अनेक मुख और नेत्र थे, अद्भुत दर्शन और अनेक प्रकार के दिव्य आभूषण।

हे धृतराष्ट्र संजय ने राजा धृतराष्ट्र का हाथ पकड़कर कहा —वह दिव्यमाला और दिव्य वस्त्र धारा है, अनेक प्रकार के चन्दनादि सुगंधित पदार्थों से लिप्त है अनेक प्रकार के आश्चर्य को उत्पन्नकरने वाला, प्रकाश युक्त और अन्तररहित हैं, उसके चारों ओर मुख हैं आकाश में सहस्त्रों सूर्यों का प्रकाश एक साथ हो जाए तो भी उस विश्व स्वरूप भगवान की क्रान्ति के समान कदाचित नहीं हो सकता है।

अर्जुन ने उस देव शरीर में एक ही स्थान पर अनेक प्रकार से स्थित सम्पूर्ण जगत को देखा।

इतना प्रकाश कि उनकी आंखें बन्द होने लगीं।

वह धरती पर गिरते २ बचा।

अपने दोनों हाथ जोड़कर, वह श्रीकृष्ण जी के सामने खड़ा

होकर कहने लगा—

हे प्रभु ! मैंने आपके शरीर में सम्पूर्ण जगत को देख लिया।

वास्तव में ही आप सृष्टि हैं, आप ही तीनों लोकों को अपने अन्दर बसाये हुये हो।

अपने मन के अन्दर ही ब्रह्मा कमल पर आसन लगाए बैठें हुए हैं।

हे वासुदेव, आपके शरीर के अन्दर सब स्थानों पर मुझे अनेक भुजाएं, अनेक उदर, अनेक मुख, अनेक नेत्र और अनन्त रूप दिखाई दे रहे हैं, आपका आदि मध्य नहीं दिखाई देता, मुझे ऐसा दिखाई देता है, कि आप किरीट गद, चक्र धारण करते हैं, तेज पुंज हैं, चारों ओर विद्यमान हैं आपका तेज अग्नि और सूर्य के समान है, जिसे देखकर मेरी आंखें चकाचौंध हो गई हैं।

हे कृष्ण जी, मुमुक्षुजनों के जाननें वाले आप ही हो, इस संसार का आधार आप ही हो, सनातन धर्म के अक्षर तथा विनाश रहित भी आप ही हो आप ही सनातन पुरुष हो।

आप अदि मध्य, अन्त कुछ नहीं है।

सूर्य चन्द्रमा आपके नेत्र हैं।

जलती हुई आग की भाँति आपका मुख है।

आपके इस विराट रूप का तेज देखकर लोग डरते हैं।

हे महात्मन आकाशऔर धरती के बीच में जो बड़ा खाली स्थान पड़ा है, इस सब में आप अकेले व्याप्त हो रहे हैं।

हे प्रभु देवताओं के समूह डर के मारे आपकी शरण आये हैं, कितने अचम्भीत होकर दूर ही से प्रणाम कर रहे हैं।

यह महर्षियों और सिद्धों के झुण्ड आपकी स्तुति कर रहे हैं।

हे भगवन ! आपके इस रूप को मैं देखकर तो सारे देव, देवता भी डर गए हैं, मैं भी तो डर के मारे व्याकुल हो रहा हूं, यह आपका शरीर इतना बड़ा है कि आकाश को स्पर्श करता है, बड़ा प्रकाशमान है, अकेक वर्णों से युक्त है, इसमें बड़ा विस्तीर्ण मुख है, बड़े नेत्र हैं, इसे देखकर डर लग रहा है, प्रभु यह कैसा विराट रूप है, जिसके आगे सारा संसार अपने आप झुक जाता है, आप महान ही नहीं, विचित्र भी हैं।'

'हां प्रभु ! यह मैं क्या देख रहा हूं, धृतराष्ट्र के सारे पुत्र आपके मुंह में प्रवेश करते नजर आ रहे हैं, इनमें से तो कितने ही आपके दांतों तले दबकर चूर्ण बन गए हैं, जैसे नदियों की अनेकों शाखाएं सागर की ही ओर दौड़ती हैं, वैसे ही यह न वीर तुम्हारे जाज्वल्यमान मुख में प्रवेश करते दिखाई देते हैं।

हे भगवन् ! जैसे अत्यन्त वेगवती पतंग नाश के लिए बड़े वेग से जलती आग में घुसी चली जाती है, ऐसे ही यह सब लोग, नाश के लिए आपके मुख में घुसे जा रहे हैं, हे कृष्ण अपने प्रज्व-लित मुखों में सम्पूर्ण लोकों को चारों ओर से चाटते हुए ग्रास लेते हो, और आपकी उग्र क्रांति सब जगह को अपने प्रकाश से परिपूर्ण करके तृप्त कर रही है।

हे प्रभु आप ऐसे ही उग्र रूप वाले कौन हो कहो, मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूं, मैं आपकी प्रवृति नहीं जानता, इससे आदि पुरुष आपको जानना चाहता हूं, हे देव श्रेष्ठ कृपा करके मुझे बतलाइये···बस यही आपसे प्रार्थना है।'

श्रीकृष्ण हंसकर बोले—'हे भक्त अर्जुन।'

इस समय इन लोकों का काल मैं हूं।'

'मैं इन लोकों का संहार करने के लिए प्रवृत हुआ हूं।'

यह बड़े-बड़े वीर योद्धा, जो सेना में खड़े हैं, जिन्हें तुम अपने सम्बन्धी कहते हो भाई, भतीजे, चाचा, ताऊ गुरु कहते हो, यदि तुम इन्हें नहीं मारोगे तो भी यह मरेंगे ही।

इसलिए अर्जुन तुम तैयार हो जाओ, कमर बाँधकर खड़े हो जाओ और इन शत्रुओं का नाश करके अपनी वीरता को सिद्ध कर दो, यह सब तो मैंने ही मार रखे हैं, तुमनें खाली तो नाम करना है, द्रोणा, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण, दुर्योधन आदि बड़े-बड़े योद्धा मैंने मारे हुए हैं, तुम्हें दुःखी होने की जरूरत नहीं, तुम आगे बढ़ो, तुम अवश्य ही विजयी होगे।

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—

हे राजन ! कृष्णजो की यह सब बातें सुनकर अर्जुन कांपने लगा और बार-बार हाथ जोड़कर नमस्कार करने लगा, डर के मारे कांपते स्वर में बोला—

हे प्रभु ! आपका प्रभाव तो अदभुत है, कीर्ति अतुलनीय है, इसी से यह सब जगत हर्षित होता है, आप में अनुराग करता है राक्षस डर के मारे भाग रहे हैं, सिद्धि के समूह आपको नमस्कार करते हैं। हे त्रिलोकीनाथ आपको सब लोग प्रणाम क्यों न करें, क्योंकि आप तो ब्रह्मा से भी बड़े आदि कर्ता हैं, आप सत्य असत्य के मूल कारण, अविनाशी हैं, इसने आपको सबका नमस्कार करना योग्य ही है।'

हे प्रभु आप आदि देव और पुरातन पुरुष हो इस सम्पूर्ण सृष्टि के लिए स्थान हो सम्पूर्ण विश्व के ज्ञाता हो, जो कुछ जानने योग्य वस्तु है आप ही हो, मुनियों के परम धरम आप ही हो, यह सम्पूर्ण विश्व आपके अनन्त रूप से व्याप्त है।

हे भगवन ! वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, ब्रह्मा और

ब्रह्मा के पितामह भी आप ही हैं, इसलिए आपको कोटि-कोटि प्रणाम।'

'हे सरवेश्वर आपके सम्मुख से नमस्कार है, चारों ओर से नमस्कार है, आप अनन्तवीर्य और अनन्त पराक्रम से युक्त हो, सबमें व्यापक हो, इसी से आप सर्व हो, मैं आपको अपना स्नेही मानता हूं, मैं पहले आपको केवल अपना साधारण मित्र मानता था, किन्तु आज···।'

आज आपका विराट रूप देखकर आपकी महिमा को जान गया हूं।

आज से पूर्व तो मैं आपसे मजाक भी कर लिया करता था, खाते-पीते चलते-फिरते हम आपस में छेड़छाड़ भी कर लिया करता था, सब लोगों के सामने ही हम दोनों एक-दूसरे से हंसी-मजाक करके उलझ भी जाया करते थे।

आज मुझे लग रहा है कि यह मेरी भूल थी मैं पाप किया करता था, अब मैं आपसे क्षमा मांगता हूं, आज तो जैसे मेरी आँखें खुल गयीं, आप ही पिता और आप ही महान गुरु हैं, तीनों लोकों में आपके बराबर कोई नहीं है।

'हे प्रभु आप ही ईश्वर हो, आप पूज्य हो, मैं आपको साष्टांग दण्डवत करता हूं, मुझ पर कृपा कीजिए प्रभु, मेरे पिछले पापों को अनजान समझकर माफ कर दीजिए, जैसे कोई पिता अपने पुत्र की भूल को क्षमा कर सकता है। मित्र, मित्र की भूल को क्षमा कर देता है, पति पत्नी के अपराधों को जैसे सहन कर लेता है।'

मैं आपसे एक बार फिर कहता हूं कि मैंने जो पहले भूलें की उसका कारण केवल मेरा अज्ञानता! अथवा आपका सम्पूर्ण

परिचय न होना था, आज मैं बहुत खुश हूं, इसलिए कि मैंने आज ईश्वर के साक्षात दर्शन कर लिए, अब तो प्रभु, आपके इस रूप को देखने की शक्ति मुझमें नहीं है, मेरी यही प्रार्थना है कि आप अपने पिछले रूप में ही वापस आ जाएं, मेरे लिए तो वह रूप अच्छा है, उस रूप में आप मेरे अपने लगते हो।

हे अर्जुन ! मेरा यह तेजमयी रूप अनन्त और आदि रूप है, इसको तुम्हारे सिवा आज तक किसी ने नहीं देखा, तुम पर खुश होकर मैंने आत्मयोग से तुझे दिखाया है, हे पांडवपुत्र, जो कोई चार वेद पढ़े, यज्ञ साधन, दान, अग्निहोत्रि दान, अग्निहोत्रादि कर्म तथा उग्ररूप प्राप्त करके देखना चाहे तो भी नहीं देख सकता, हे अर्जुन, मेरे इस घोर रूप को देखकर तुम व्यथित होते हो, व्याकुल मत हो, अपनी सूरता को देखो निडर होकर, खुशी मन हो मैं मेरे इस पहले रूप को फिर देखो।'

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—हे कौरव राजा।

श्री कृष्ण ने फिर से अपना पहला रूप धारण कर लिया और डरे हुए अर्जुन को प्यार से कहा, हे वीर, अब तो तुम खुश हो ?

'हे कृष्णजी, अब तो मेरा मन शांत है; आपका यह शांत मनुष्य रूप देखकर मेरा सारा डर जाता रहा, अब मेरे मन में कोई भी शंका नहीं, मेरी आत्मा के अंधेरे दूर हो गए हैं, आपके दिए ज्ञान से, मैं इस मायाजाल से मुक्त हो रहा हूं।'

'हे वीर अर्जुन ! तुमने जो मेरा रूप देखा है, उस रूप को देखने के लिए देवता भी तरस जाते हैं, यह बात याद रखो वीर अर्जुन जो कोई मुझको सच्चे मन से याद करता है, सच्चे हृदय से मेरी उपासना करता है, वह ही मुझे पा लेता है, भक्ति में ही शक्ति है, मैं अपने भक्तों का पूरा ख्याल रखता हूं।'

बारहवां अध्याय

भगवान श्रीकृष्ण के विराट रूप को देखने के पश्चात उनके फिर से पुराने रूप को देख अर्जुन का मन शाँत हो गया था, वह धैर्य से कृष्ण जी के पास जाकर बोला—

'हे मनमोहन ! जो अन्य प्रेम-भक्तजन इस पूर्वोक्त प्रकार से निरन्तर आपके भजन ध्यान में लगे हुए आप सगुणरूप परमेश्वर को अति श्रेष्ठ भाव से उपास न करते हैं और जो अविनाशी, सच्चदानन्दधन निराकार को ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकाश के भक्तों में अति, उत्तम योग्यवेत्ता कौन है—

'अर्जुन के मुख से यह शब्द सुन कृष्णजी बोले—

'हे अर्जुन मेरे मन को एकाग्र करके, निरन्तर मेरे भजन उपासना में लगे हुए जो भक्तजनजो मेरे लिए अपने मन में श्रद्धा रखते हुए मुझे सुगणरूप परमेश्वर जपते हैं, वे मेरे को योगियों में भी उत्तम योगी मान्य हैं, वह मुझे सर्वाधिक प्यारे लगते हैं।'

जो पुरुष इंद्रियों के समुदाय को अच्छी तरह बस में करके, मन बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एक रस रहनें वाले नित्य अचल निराकार, अविनाशी, ईश्वर, ब्रह्मा को निरन्तर एक भाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सबमें समान भाव वाले, योगी भी मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

किन्तु उस सच्चदानन्दघन निरंकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित वाले पुरुषों के साधन में क्लेश अर्थात् परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहभिमानियों से अव्यक्तविप्यक, गीत, दुखःपूर्वक प्राप्त की जाती है, यानी जब तक शरीर में अभिमान रहता है, तब तक शुद्ध सच्चिदानन्दघन निरंकार, ब्रह्म में स्थित होना कठिन है और जो मेरे परायण हुए भक्त सम्पूर्ण कर्मों को मेरे अर्पण करके मुझमें गुणरूप परमेश्वर को ही हर समय याद करते हैं उपासना करते हैं, ऐसे भक्तजनों का मैं शीघ्र उद्धार करके उन्हें जीवन-मृत्यु के बन्धनों से मुक्त कर देता हूं।

इसलिए हे अर्जुन, तुम मेरे में अपना मन लगाओ और मेरे में ही बुद्धि को लगाओ, इसके पश्चात तुम मुझमें ही निवास करोगे, अर्थात् मेरे को ही पा लोगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

'यदि तुम मेरे में ही मन लगाओ और मेरे में ही बुद्धि को लगाने में स्थित हो तो, अभ्यास रूप, योग के द्वारा मेरे को प्राप्त होने के लिए इच्छा करो।

यदि तुम इन अभ्यासों में असमर्थ हो तो केवल मेरे लिए कर्म करने के ही परायण, अर्थात् स्वार्थ को त्यागकर परमेश्वर को ही परम आश्रय और परमगति समझकर, इस प्रकार मेरे कर्मों को करता हुआ मेरी प्राप्ति रूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा।

यदि इसको भी करने में असफल रहे तो जीते हुए मन वाला और मेरी प्राप्ति रूप योग के शरण होकर सब कर्मों के फल को मेरे लिए त्याग दे, क्योंकि कर्म का न जानकर किये हुए, अभ्यास से परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है, तथा ध्यान से भी सब कर्मों के फल का त्याग करना श्रेष्ठ है और त्याग से ही तत्काल मन को शांति

मिलती है।

इस प्रकार शांति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों द्वेष भाव से रहित स्वार्थ हित सबका प्रभो और प्रेमी दयालु है, तथा ममता से रहित और अहंकार से दूर, सुख-दुःख की प्राप्ति में सम और क्षमावान है।

तथा जो ध्यान योग में युक्त हुआ निरन्तर लाभ हानि में सन्तुष्ट है तथा जो ध्यान योग में लगा हुआ निरन्तर लाभ-हानि में भी धैर्य रखता है और मत व इन्द्रियों को अपने बस में करके मुझ पर पूर्ण विश्वास रखता है, मेरी उपासना करता है, ऐसा प्रेमी भक्त ही मुझे प्रिय है।

जिससे कोई भी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है, तथा जो खुशी और दुःख, डर से रहित है, वह भक्त भी मेरे को प्रिय है।

जो प्राणी आकांक्षाओं से भी रहित, तथा बाहर-अन्दर से पवित्र और जिस काम के लिए आया था, वह काम पूरा कर चुका है, पक्षपात रहित है और दुःखों से बचा हुआ है, वह सर्व आरम्भों का त्यागी, मेरा भक्त प्रिय है।

जो न कभी खुश होता है और न रोता है, न किसी का बुरा करता है न कामना करता है, तथा अच्छे और बुरे दोनों कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्ति युक्त प्राणी मेरे को प्रिय है।

जो प्राणी शत्रु, मित्र के और मान अपमान के सम है, तथा सर्दी, गर्मी, सुख-दुःख का अनुभव भी नहीं करता, अर्थात् इन सबसे एक-सा ही रहता है, मैं सदा उसका शुभचिंतक हूं।

और जो मेरे परायण हुए अर्थात्, मेरे को परम आश्रय और

परम गति एवं, सबका आत्मरूप और सबसे दूर, परमपूज्य समझ कर सच्चे मन से इस अध्याय में कहे हुए धर्ममय, अमृतमय को सच्चे मन से सेवन करता है, वही भक्त मेरे को सदा प्रिय है।

चौहदवां अध्याय

फिर श्री कृष्ण जी अर्जुन से बोले—

'हे अर्जुन ! ज्ञान से भी अति उत्तम परम ज्ञान को फिर भी तुम्हारे लिए कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं।'

हे अर्जुन ! इस ज्ञान को पाकर मेरे स्वरूप को पाने वाला प्राणी सृष्टि आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होता है और प्रलय काल में भी चिंतित नहीं होते, क्योंकि वे केवल मेरी (ईश्वर) का पूजन करते हैं और सिवा वे और किसी चीज की उपासना नहीं करते।

'हे पांडवपुत्र ! मेरा महान ब्रह्म रूप, प्रकृति, अर्थात् त्रिगुण-मय माया सम्पूर्ण भूतों की योनि है, यानी गर्भ धारण करने का स्थान है और मैं ही वह शक्ति दूंगा इन योनियों में मैं चेतना रूप बीज का धारण करता हूं, उस जड़ चेतक के संयोग से सब भूतों का उत्पात होता है।'

नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियां हैं, उन सबकी त्रिगुणी माया तो गर्भ को धारण करने वाली माता है, मैं बीज को स्थाप्त करने वाला पिता हूं।

सत्यगुण, रजोगुण और तमोगुण ऐसे यह प्रकृति से उत्पन्न

हुई तीनों गुण, इस अविनाशी जीवात्मा के शरीर में ही होते हैं।

'हे पांडव वीर। उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला, निर्विकार सत्वगुण तो निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से अर्थात् ज्ञान के अभिमान से बांधता है। और सर्वदेहा, जीवात्मा को इन्द्रियों और अन्दर की व्यर्थ चेष्टाओं को आलस्य और निद्रा के द्वारा बांधता है।

क्योंकि हे अर्जुन! सत्वगुण सुख से लगता है और रजोगुण कर्म में लगता है, तथा तमोगुण तो ज्ञान को आच्छादन करके अर्थात् ढक के प्रमाद में भी लगता है और जो रजोगुण और तमोगुण और सत्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ाता है।

इसलिए जिस काल में इस शरीर तथा आत्मा में और साथ ही इन्द्रियों में चेतना और बोधशक्ति पैदा होती है, उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि सत्वगुण बढ़ा है।

और रजोगुण के बढ़ने पर लोभ और प्रवृत्ति शरीर को मन को अशांत कर देती है, हृदय के अन्दर विषय योग की लालसा पैदा होती है जिससे प्राणी व्याकुल होता है, बुद्धिहीन हो जाता है।

'हे पांडवपुत्र तमोगुण बढ़ने पर अन्तकरण और इन्द्रियों में अप्रकाश एवं कर्त्तव्य कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद व्यर्थ चेष्टा और निद्रा करण मोहनी वृत्तियां यह सब उत्पन्न होती है।'

जब यह जीवात्मा सत्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करने वालों के मल रहित स्वर्ग आदि प्राप्त होता है।

रजोगुण के बढ़ने पर उस काल में मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले प्राणियों में पैदा होता है, तथा तमोगुण

बढ़ने पर मरा हुआ प्राणी कीट पशु आदि मूढ़ योनियों में पैदा होता है।

क्योंकि सात्विक कर्म का सुख तो ज्ञान और वैराग्य आदि निर्मल फल कहे जाते हैं।

सत्वगुण से ज्ञान पैदा होता है, और रजोगुण से लोभ पैदा होता है, तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह पैदा होते हैं, जिससे अज्ञान पैदा होता है, इसीलिए सत्वगुण में स्थित हुए प्राणी स्वर्ग लोक में जाते हैं और रजोगुण में स्थित प्राणी इसी धरती पर आते-जाते रहते हैं।

तमोगुण कार्य रूप निद्रा प्रमाद विषय विकार लालच और आलस्यादि में स्थित हुए तमाम प्राणी, पशु, पक्षी योनियों में पैदा होते हैं।

हे अर्जुन जिस काल में निद्रा अर्थात् समष्टि चेतन में एकी भाव से स्थित हुआ साक्षी पुरुष तीनों गुणों को सिवा अन्य किसी को कर्त्ता नहीं देखता है, अपने आप पर पूर्ण, काबू पाकर मेरा ध्यान करता है, तीनों गुणों से सच्चिदानन्दघन स्वरूप को प्राप्त होता है, अर्थात् वह मुझे पा लेता है, तथा यह पुरुष स्थूल शरीर की उत्पति के कारण रूप तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म-मृत्यु वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हुआ परमानन्द को प्राप्त होता है, इस प्रकार भगवान के रहस्ययुक्त वचनों को सुनकर अर्जुन ने पूछा—हे प्रभु इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है और किस प्रकार के आचरणी वाला होता है, तथा यह प्राणी किस उपाय से इन तीनों से अतीत होता है।

श्री कृष्णजी अर्जुन के प्रश्नों का उत्तर देते हुए बोले—

हे भक्त ! जो प्राणी सत्वगुण, के कार्य रूप प्रकाश और रजोगुण के कार्य रूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्य रूप मोह को भी न तो प्रवृत्ति होने पर बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है, तथा जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता है और केवल गुण ही गुण में प्रयोग करते हैं, ऐसा समझता हुआ जो सच्चदा-नन्दघन परमात्मा में एकी भाव से स्थित रहता है, एवं उस स्थिति से चलायमान नहीं होता।

जो आत्म भाव में स्थित हुआ दुःख-सुख को समान समझने वाला है तथा मिट्टी, पत्थर और सुकर्म में समान भावना वाला और धैर्यवान है तथा जो प्रिय और अप्रिय को वरावर समझता है और अपनी निंदा प्रशंसा भी समान भाव वाला है, तथा जो मान अपमान को समान जानता है और मित्र तथा शत्रु के बारे में भी कोई अन्तर नहीं समझता।

वह सम्पूर्ण आरम्भों में कर्त्तापन अभिमान से रहित हुआ प्राणी गुणातीत कहा जाता है।

और जो प्राणी अव्यभिचारी भक्ति रूप योग के द्वारा मेरे को निरन्तर याद करते हैं, मेरी उपासना में खोये रहते हैं, वे लोग हर प्रकार की बाधाओं को पार करके, मुझे पा लेते हैं, अर्थात् ईश्वर को पाने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

'अर्जुन ! उस अविनाशी पर ब्रह्म का और अमृत का नित्य धर्म का और अखण्ड एक रस आनन्द का मैं ही आश्रय हूं, अर्थात् उपर्युक्त ब्रह्म अमृत अव्यय और शाश्वत धर्म तथा एकान्तिक सुख यह सब मेरे ही नाम हैं।

इसलिए इनका मैं परम आश्रय हूं।

पन्द्रहवां अध्याय

फिर श्री कृष्णजी अर्जुन के भोले भाले चेहरे की ओर देख कर बोले—'हे अर्जुन !'

आदि पुरुष, परमेश्वर रूप मूल वाले (आदि पुरुष नारायण वासुदेव भगवान ही नित्र है) और ब्रह्मरूप मुख्य ज्ञान वाले जिस रूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं, वेद पत्ते न हो गए हैं, उस संसार रुप वृल को जो प्राणी मूल रहित तत्व से जानता है, वह वे . का तात्पर्य को जानने वाला है।

'हे पांडवपुत्र ! उस संसार वृक्ष को तीनों गुण रूप जल के द्वारा बढ़ी एवं विषय भाग रूप कोंपलों वाली देव प्राणी और तिर्यक आदि योनि रूप शाखा नीचे और ऊपर फैली हुई है तथा मानव योनि में कर्मों के अनुसार बांधने वाली अहंता ममता और इस वृक्ष की शाखा रूप ब्रह्मा से प्रकट होने वाले और यज्ञा दिक कर्मों के द्वारा इस संसार के वृक्ष की रखा और वृद्धि के करने वाले एवंशी को बढ़ाने वाले, होने से वेदों को पत्ते कहा गया है। वासना रूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं।

परन्तु इस संसार में वृक्ष का रूप जैसा कहा है वैसा यहां विचराल काल में नहीं पाया जाता है, क्योंकि न तो इसका आदि है और न ही अन्त, तथा न अच्छी प्रकार से स्थित ही है।

इसीलिए इस ममता और वाष्व रूप अति दृढ़ वाले संसार रूप पोपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्य रूप शस्त्र द्वारा काटकर उस के पश्चात उस पर परम पद रूप परमेश्वर को अच्छी प्रकार तलाश करना चाहिए कि जिसमें गए हुए पुरुष फिर पीछे संसार में नहीं आते हैं और जिस ईश्वर से यह पुरातन संसार की प्रवृति विस्तार को प्राप्त हुई है, उसी आदि पुरुष नारायण की मैं शरण हूं। इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर नष्ट हो गया है, मन और मोह जिनका जीत लिया है। आसक्ति रूप दोष जिनके और परमात्मा के स्वरूप में है निरन्तर स्थिति जिनकी तथा अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है, कामना जिनकी ऐसे वे सुख-दुख नामक द्वंदों से विभक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं।

उस अपने आप प्रकाश देने वाले परसपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न आग ही प्रकाशित कर सकती है, तथा जिस ईश्वर को पाकर प्राणी इस संसार से मुक्त हो जाते हैं वही मेरा परम धरम है।

हे पाँडव वीर, इस शरीर में यह जीवात्मा के राही अंश हैं और वही रस त्रिगणमयी माया में स्थित हुई मन सहित पांचों इन्द्रियों को आकर्षक करता है।

जैसे कि वायु गंध के स्थान से गन्ध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका का स्वामी जीवात्मा भी, जिस पहले शरीर को त्याग देती है उससे इन मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है।

उस शरीर में स्थित हुआ यह जीवात्मा श्रोत्र चक्षु और त्वचा को तथा रसना घ्राण और मन को आश्रय करके सहारे से

ही विषय को सेवन करता है, परन्तु शरीर छोड़कर जावे हुए को अथवा शरीर स्थित हुए की विषयों को भी भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानी लोग नहीं पहचानते हैं, केवल ज्ञानीजन नहीं जानते हैं, क्योंकि योगीजन भी अपनें हृदय में स्थित हुई इस आत्मा को यत्न करते हुए तत्व से जानते हैं।

और जिन्होंने अपने अन्त:करण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे ज्ञानीजन यत्न करते हुए भी इस आत्मा को शुद्ध नहीं कर पाते हैं।

हे वीर पाँडव ! जो प्रकाश सूर्य में है वह सारे जगत को प्रकाशित करता है तथा जो प्रकाश चन्द्रमा है और जो तेज आग के अन्दर है, उसको तुम मेरे ही रूप जानो, वे सब प्रकाश मेरे हैं, और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी ताकत से सब भूतों को धारण करता हूं और इस स्वरूप अर्थात अमृतमय चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियों को पुष्ट करता हूं।

मैं ही प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वतन अग्नि रूप होकर प्रपा और अपान से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्त को पचाता हूं।

और मेरे ही स्मृति, ज्ञान और उपोहन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूं, तथा वेदों का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूं।

पांडव वीर अर्जुन ! इस संसार में नाशवान मिटने वाले और अमर अविनाशी भी, यह दो प्रकार के प्राणी हैं, उनमें सारे भूत प्राणियों के शरीर तो मिटाने वाले हैं और जीवात्मा अमर है वह कभी नहीं मिटती।

तथा उन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही हैं कि जो तीनों

लोकों में प्रवेश करके सबका पालन-पोषण करते हैं उसे ही ईश्वर कहा गया है वही परमेश्वर है वही मैं हूं।

क्योंकि मैं नाशवान जड़ वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूं और माया में स्थित अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं, इस लिए लोक में और वेद में भी पुरुषत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।

'हे अर्जुन इस प्रकार तत्व से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुपोत्तम जानता है वह सर्वत्र प्राणी सब प्रकार से निरन्तर मुझ वासुदेव ईश्वर को ही भेजता है। मेरी हो उपासना करता है।'

'हे पाँडवपुत्र! ऐसे यह अति रहस्य युक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है। यानि उसे करने के लिए कुछ भी शेर नहीं रह जाता।

सोलहवां अध्याय

फिर श्रीकृष्णजी बोले—'हे अर्जुन! दैव सम्पदा जिन प्राणियों को प्राप्त है, तथा जिनको आसुरी सम्पदा प्राप्त है, उनके लक्षण अलग अलग कहता हूं।'

उनमें से सर्वथा भय का अभाव, अन्त करण की पूरी तरह से सफाई शुद्धि तत्व ज्ञान के लिए स्थान योग से निरंन्तर दृढ़ता और सात्विक दान तथा इन्द्रियों का दमन भगवत पूजा और अग्निहोत्रियों उत्तम कर्मों का आचरण एवं वेद शस्त्र का पढ़ना तया भगवान नाम का कीर्तन तथा धर्म पालन के लिए

कष्ट सहन करना, एवं शरीर और इन्द्रियों सहित अन्तःकरण की सरलता।

तथा मन वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना तथा सत्य और मीठे वालों मधुरवाणी से अपने पर अत्याचार करने वाले का भी मन जीत लेने वाला। कर्मों में कर्त्तापन के अभिमान का त्याग एवं अन्त करण की उपरमता अथवा मन की चंचलता का अभाव किसी की निन्दा न करना तथा सब भूतों के प्राणियों में हेतु रहित दया इन्द्रियों पर पूर्ण काबू और उन्हें विषय विकार से छूट की शक्ति प्राप्त कर लेना तथा तेज क्षमा धैर्य, भीतर और बाहर से पूर्ण शुद्धि एवं किसी में भी शत्रु भाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव यह सब तो दैवी सम्पदा को प्राप्त करने वाले प्राणी के लक्ष्य हैं।

'हे वीर अर्जुन! पाखण्ड और अभिमान तथा क्रोध और कड़वी वाणी और अज्ञान वाणी यह सब आसुरों की सम्पदा वाले प्राणियों के लक्षण हैं।'

उन दोनों प्रकार की सम्पदाओं में दैवी सम्पदा से तो मुक्ति के लिए और आसुरी सम्पदा बांधने के लिए मानी गई हैं, इस-लिए पांडवपुत्र तुम उदास क्यों होते हो, क्योंकि तुम तो दैवी सम्पदा के उपासक हो।

'हे अर्जुन! इस संसार में भूतों के स्वभाव दो प्रकार के माने गए हैं, एक तो देवों जैसा और दूसरा असरों जैसा, उसमें देवों का स्वभाव विस्तारपूर्वक कहा गया है इसलिए अब असुरों के स्वभाव को विस्तारपूर्वक सुनो।

'हे पांडवपुत्र! आसुरी स्वभाव वाले पुरुष. कर्तव्य कार्य में

प्रवृत होने को और कर्तव्य कार्य से निवृत होने को भी नहीं जानते हैं इसलिए उनमें न तो बाहर और न ही अन्दर की पवित्रता है, न श्रेष्ठ आचरण और न सत्य भाषण ही है।

वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहते हैं कि संसार के आश्रय हित और सर्वथा झूठा एवं बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री-पुरुष के संयोग में पैदा हुआ है।

इसलिए केवल भोगों को भोगने के लिए ही हैं, इसके सिवा और क्या है, इस प्रकार इस मिथ्या ज्ञान को अवलम्बन करके नष्ट हो गया है। स्वभाव जिनका मन्द है, बुद्धि जिनकी ऐसे वे सबका उपकार करने वाले क्रूर कर्मी, मनुष्य केवल जगत का नाश करने के लिए ही पैदा होता है।

वे प्राणी दम्भ, मान और मद से युक्त हुए किसी प्रकार भी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का सहारा लेकर तथा अज्ञान से मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुए संसार में खोए रहते हैं।

वे मरने के पश्चात रहने वाली अनन्त चिन्ताओं को आश्रय किए हुए और विषय भोगों को भोगने में तत्पर हुए एवं इतना मात्र ही आनन्द ऐसे मानने वाले हैं, इसलिए आशा रूप सैंकड़ों फांसियों से बंधे हुए काम, क्रोध के परायण हुए विषय भोगों की पूर्ति से अन्यायपूर्वक धनादिक बहुत से पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।

उन पुरुषों के विचार इस प्रकार के होते हैं कि मैंने आज यह तो पाया है और इस मनोरथ को प्राप्त होऊंगा। तथा मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह होगा। वह शत्रु

मेरे द्वारा मारा गया और यह दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूंगा तथा ईश्वर और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूं और सब सिद्धांतों से युक्त एवं बलवान और खुश हूं।

मैं बहुत बड़ा धनवान हूं और मेरा परिवार बहुत बड़ा है, मेरे जैसा और कोई दूसरा नहीं है, मैं यज्ञ करूंगा, मैं दान करूंगा, इस प्रकार से मुझे खुशी प्राप्त होगी।

इसलिए वे कई प्रकार से भ्रमित हुए चिन्ता वाले अज्ञानी जन मोह रूप जाल में फंसे हुए एवं विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त हुए महान अपवित्र नरक में गिरते हैं, वे अपने आपको श्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी धन और मान के मद से युक्त हुए शास्त्र विधि से रहित केवल नाम मात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से जन करते हैं।

वे अहंकार, बल, गर्व, कामना और क्रोधादि के परायण हुए एवं दूसरों की निंदा करने वाले हैं, ऐसे उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूर कर्मी नराधमों को संसार में बार-बार असुरी योनियों में ही गिरता हूं, अर्थात् शूकर, कूकर आदि नीच योनियों में ही पैदा करता हूं।

इसलिए हे अर्जुन वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्म में आसुरी योनियों को प्राप्त हुए मेरे को न प्राप्त होकर उससे अति नीच को ही प्राप्त होते हैं, यानि वे नरक में कष्ट पाते हैं।

पांडववीर ! काम, क्रोध, तथा लोभ, यह तीन प्रकार के नर्क के द्वारा आत्मा को नाश करने वाले हैं अर्थात अधोगति में ले जाने वाले हैं इससे इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

क्योंकि इन तीनों नरक के द्वार से मुक्त हुआ यानि काम, क्रोध और लोभादि विकारों से छुटा हुआ प्राणी अपने कल्याण

का आचरण करता है।

इससे वह परम गति को जाता है यानि कि वह मुझे पा लेता है, जो प्राणी शास्त्र की विधि को टालकर अपनी इच्छा से प्रयोग करता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है, और न ही परम-गति को तथा न सुख को ही प्राप्त होता है।

इससे तुम्हारे लिए कर्तव्य और अकर्तव्य, व्यवस्था में शीघ्र ही प्रमाण हैं, ऐसा जानकर तुम शास्त्र विधि से नियत किये हुए कर्म करो।

सत्रहवां अध्याय

इस प्रकार श्री कृष्णजी के वचन सुनकर अर्जुन बोला— 'हे प्रभु ! जो शास्त्र विधि को त्यागकर केवल श्रद्धा से युक्त हुए देवादि का पूजन करते हैं…उनकी स्थिति क्या होती है इसके विषय में मुझे बताएं।

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्री कृष्णजी बोले—

'हे अर्जुन !प्राणी को वह बिना शास्त्रीय संस्कारों से केवल स्वभाव से पैदा हुई सात्विक की और राजसी तथा तामसी, ऐसे तीनों ही प्रकार की ही होती है उसको तुम मेरे से सुनो—

'हे भारत ! सभी मनुष्यों को श्रद्धा उनके अनन्त करण के अनुरूप होती है, तथा वह प्राणी श्रद्धामय है इसलिए जो भी प्राणी जैसी श्रद्धा वाला है वह स्वयं भी वही है, अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है, वैसा ही उसका स्वरूप है, उनमें सात्विक प्राणी

तो देवी को पूजते हैं और राक्षस पुरुष यक्ष और राक्षसों को पूजते हैं।

'हे अर्जुन ! जो मनुष्य शस्त्र विद्या से रहित केवल कल्पित घोर तप को तपते हैं, तथा दम्भ और अहंकार से युक्त एवं कामना आसक्ति और बल के अभिमान से भी युक्त हैं।

तथा शरीर रूप से स्थित भूत समुदाय को अर्थात शरीर मन इन्द्रियों के रूप में परिणत हुआ आकादि पाँच भूतों की ओर अंत करण में स्थित मुझ अन्तर्यामी को भी कृश करने वाले हैं उन अज्ञानियों को तुम आसुरी स्वभाव वाले ही जानो।

'हे अर्जुन ! जैसे श्रद्धा तीन प्रकार की होती है वैसे ही भोजन भी सबको अपनी २ प्रकृति अनुसार तीन प्रकार से प्रिय है, वैसे ही यज्ञ तप और दान भी तीन २ प्रकार के होते हैं। इन भेदों को मैं तुम्हें बताता हूं।

आयु, बुद्धि, बल, अरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रस युक्त चिकने स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से मन को प्रिय ऐसे आहार अर्थात भोजन करने से पदार्थ तो सात्विक पुरुषों को प्रिय होते हैं।

कड़वे खट्टे लवणयुक्त और अति गरम तथा तीक्षण रूखे और अहंकार एवं दुःख की चिंता और रोगों को पैदा करनें वाले आहार अर्थात भोजन करनें के पदार्थ, राजस प्राणियों को प्यारे होते हैं।

तथा जो भोजन अधप का रस रहित और दुर्गन्धयुक्त एवं

बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी वह भोजन तापस पुरुषों को प्रिय होता है।

हे अर्जुन जो यज्ञ शास्त्र विधि से नियत किया हुआ है तथा करना ही कर्तव्य है ऐसे मन को समाधान करके फल को न चाहने वाले पुरुषों द्वारा किया जाता है, वह यज्ञ तो सात्विक है और हे अर्जुन! जो यज्ञ केवल दम्भाचरण के लिए अथवा फल के लिए किया जाता है, उस यज्ञ को तुम राक्षस यज्ञ जानो।

तथा शास्त्र विधि से हीन और अन्नदान से रहित एवं बिना मन्त्रों के बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किए हुए यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

इस प्रकार से देवता, ब्राह्मणगण और ज्ञानीजनों की पूजा एवं सफलता पवित्रता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा इस शरीर का तप कहा जाता है, तथा जो उद्धेग को न करने वाला प्रिय हित कारक एवं यथार्थ भाषण हैं, सच बोलने वाला है जो वेद शास्त्रों को पढ़ने वाला है और ईश्वर भक्ति करता है उसे हम वाणी सम्बन्धी तप करते हैं।

मन को खुशी और शांति भाव एवं भगवत चिंतन करने का स्वभाव मन का निग्रह और अन्तःकरण की पवित्रता ऐसे यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है।

परन्तु हे पांडव वीर! फल को न चाहने वाले निष्कामों योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से किए हुए पूर्वोक्त तीन प्रकार के तप को सावित्वक कहते हैं।

और जो तप सत्कार, मान, पूजा अथवा केवल पाखण्ड से

किया जाता हैं वह अनिश्चित और क्षणिक फल वाला तप यहां राजस कहा गया है जो तप मूढ़ता पूर्वक हठ से मन वाणी और शरीर की पीड़ा के सहित अथवा दूसरों के अनिष्ट करने के लिए किया जाता है, वह तामस कहा गया है।

हे अर्जुन ! दान देना ही कर्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान, देश, काल और पात्र को प्राप्त होने पर प्रत्युपकार न करने वाले के लिए दिया जाता है, उस दान को सात्विक कहा गया है।

और जो दान कलेशपूर्वक तथा प्रति उपकार के प्रयोजन से अपने स्वार्थ के लिए किया जाता है उस दान को राजस कहा गया है।

जो दान बिना सत्कार अथवा तिरस्कारपूर्वक किया जाता अथवा अयोगदेश काल में कुपात्रों के लिए अर्थात मद, मांसादि अभक्ष्य वस्तुओं के खाने वालों एवं चोरी आदि नीच कर्म करने वालों के लिए दिया जाता है, उस दान को तामस कहा गया है।

हे अर्जुन ! ऊंतत् सत् ऐसे यह तीन प्रकार के सच्चदानन्द धन ब्रह्म नाम कहा गया है, उसी से सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादिक रचे गए हैं।

इसलिए वेद को पढ़ने वाले श्रेष्ठ पुरुषों को शास्त्र विधि से नियत की हुई, यज्ञ दान, और तप रूप क्रियायें सदा 'ऊं' ऐसे परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं।

तत् अर्थात तत् नाम से कहे जाने वाले परमात्मा के नाम को ही ये सब है, ऐसे इन भाव से फल को न चाहकर नाना प्रकार की यज्ञ तप रूप क्रियायें, तथा दान रूप क्रियायें कल्याण की

इच्छा वाले पुरुषों द्वारा की जाती हैं।

सत् ऐसे यह परमात्मा का नाम सत्य भाव में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा हे पांडव वीर, उत्तम कर्म में भी सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है।

तथा यज्ञ, तप और दान में जो स्थित है, वह भी सत है ऐसे कही जाती है और उस परमात्मा के अर्थ किया हुआ कर्म निश्चय पूर्वक कथन है ऐसे कहा जाता है।

हे अर्जुन ! बिन श्रद्धा के किया हुआ हवन तथा दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह समस्त, असत् ऐसे कहा जाता है।

इसलिए वह न तो इस लोक में लाभ दायक है और न हो मरने के पश्चात ही लाभदायक है।

इसलिए प्राणी को चाहिए कि सच्चदानन्द धन परमात्मा के नाम का निरन्तर चिंतन करे, ईश्वर की उपासना करे।

सच्चे मन से ईश्वर की पूजा, श्रद्धा से की हुई भक्ति का फल अच्छा ही मिलता है।

स्वार्थ के लिए की गई पूजा को मैं पूजा नहीं मानता।

अठारहवां अध्याय

अर्जुन नें श्री कृष्ण से कहा—

हे प्रभु ! मैं सन्यास और त्याग के तत्व अलग अलग जानना चाहता हूं, कृपा करके मुझे इस विषय में जरा विस्तार से बताइए।

हे अर्जुन ! कितने पण्डितजन तो काम्य कर्मों के त्याग को जानते हैं और कितने ही विचार शुल्क सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कंहते हैं तथा कई विद्वान कहते हैं कि कर्म सभी देश युक्त हैं, इसलिए त्याग के योग्य हैं दूसरे विद्वानों का मत है कि यज्ञ दोनों तपरूप कर्म त्यागने योग्य नहीं है।

परन्तु वह त्याग सात्विक, राजस और तामस ऐसे तीन के कहे गए हैं, तथा यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग ने योग्य नहीं हैं, किंतु यज्ञ, दान और तप तीनों ही बुद्धिमान प्राणियों को पवित्र करने वाले हैं।

इसलिए हे पार्थ, यह यज्ञ ज्ञान और तपरूप कर्म तथा और भी सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्म आसक्ति और फलों को त्याग कर अवश्य करना चाहिए।

हे अर्जुन नियत कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है, इसलिए मोह से उसका त्याग करना तामस त्याग कहा गया है।

यदि कोई प्राणी जो कुछ दुश्कर्म करता है, वह सब ही दुःख रूप है ऐसे समझकर शरीरिक क्लेक के भय से कर्मो का त्याग कर दें तो उसका यह त्याग करना व्यर्थ है, इसलिए कर्म करने को कर्तव्य समझकर करना चाहिए जो लोग शास्त्र विधि नियत किया हुआ कर्तव्य कर्म आसक्ति को और फल को त्यागकर किया जाता है उसे ही सात्विक त्याग माना गया है।

हे अर्जुन ! जो प्राणी कल्याण कारक कर्म से तो द्वेष नहीं करता है और कल्याण कारक कर्म में आसक्त नहीं होता है, वह शुद्ध सत्वगुण से युक्त हुआ पुरुष संशय रहित ज्ञानवान और त्यागी है।

क्योंकि इस शरीरधारी प्राणी द्वारा सम्पूर्णता से सब कर्म त्यागे जाने को शब्द नहीं है, इससे जो पुरुष कर्मों का त्यागी है वही त्यागी माना जाता है।

सकामी प्राणी के कर्म का ही अच्छा-बुरा और मिला हुआ ऐसे तीन प्रकार के फल मिलने के आश्रय भी होता है और त्यागी पुरुषों के त्याग का फल किसी काल में नहीं होता।

हे महा वीरों ! सम्पूर्ण कर्मो को सिद्धि के लिए अर्थात कर्मो के सिद्ध होने में यह पांच हेतु सांख्य सिद्धांत में कहे गए हैं, उनको तुम मेरे से भली प्रकार जानो।

मनुष्य मनवाणी और शरीर से शस्त्र लोक के अनुसार अथवा विपरीत भी जो कुछ कर्म आरम्भ करता है, उसके यह पाँचों ही कारण है, परन्तु ऐसे होने पर भी जो प्राणी अशुद्ध बुद्धि होने के कारण उस विषय में केवल शुद्ध स्वरूप आतमा को करता देखते हैं वह मलिन बुद्धि वाला अज्ञानी यर्थाथ नहीं देखता है।

हे अर्जुन ! जिस पुरुष के अन्दर में कर्ता है, ऐसा भाव नहीं है, तथा जिसको बुद्धि सांसरिक पदार्थों में और सम्पूर्ण कर्मों में लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकों को मारकर भी न तो मरता है और न ही पास से बंधता है।

'हे अर्जुन ! ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय, यह तीनों तो कर्म के प्रेरक हैं, अर्थात इन तीनों के संयोग से तो कर्म में प्रवृत्त होने की इच्छा पैदा होतो है और कर्ता, भरण और क्रिया यह तीनों कर्म के संग्रह हैं।'

उन सब में ज्ञान और कर्म तथा कर्ता भी गुण के भेद से सांख्य शास्त्र में तीन २ प्रकार से कहे गए उनको तुम मेरे से सुनो।

जिस ज्ञान से प्राणी अलग-अलग सब भूतों में एक अविनाशी परमात्मा को विभाग रहित सम भाव से स्थित देखता है उस ज्ञान को तो तुम सत्त्रिक जानो और जो ज्ञान भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक भावों से जाना जाता है उस ज्ञान को राजस जानो।

जिस ज्ञान को एक कार्य रूप शरीर में ही सम्पूर्णता के सदृश आसक्त है, जो नाशवान शरीर को ही आत्मा मानकर उसमें सर्वस्व की भांति रहता है, तथा जो विना युक्त वाला अर्थ से रहित तुच्छ है, वह तामस कहा गया है।

'हे अर्जुन ! जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया हुआ और कर्तापन के अभिमान से रहित फल को न चाहने वाले पुरुष द्वारा बिना राग द्वेष से किया हुआ है। वह कर्म सात्विक कहा जाता है।

और जो कर्म परिश्रम से युक्त है। उसे राजस कहा गया

है।

तथा जो कर्म परिश्रम हानि, हिंसा, और सामर्थ्य को न विचारकर केवल अज्ञान से आरंभ किया जाता है वह कर्म तामस कहा जाता है।

हे अर्जुन ! जो कर्त्ता आसक्ति से रहित और अहंकार के वचन न बोलने वाला धैर्य उत्साह से युक्त कार्य के सिद्ध होनें और न होने से खुश और गम रहित है, वह कर्त्ता तो सात्विक है, जो आसक्ति से युक्त कर्मों के फल को चाहने वाला और लोभी है, तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला अशुद्धधारी और हर्ष लोक से लिपायमान है वह कर्त्ता राजस कहा गया है।

'जो घमंडी दुराचारी धूर्त्त है वह कर्त्ता तामस कहा जाता है। अर्जुन ! तुम बुद्धि का और कारण शक्ति का भी गुणों के कारण तीन प्रकार का भेद मुझसे सुनो।'

प्रवृति और निवृत्ति मार्ग, तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को एवं भय और बुद्धि अभय तथा वन्धन और मोक्ष को जो बुद्धि से जानती है वह बुद्धि सात्विकी है।

'जिस बुद्धि द्वारा धर्मअधर्म को नहीं जानता वहबुद्धि राजसी है। जो बुद्धि तमो गुण से आवृत हुई बुद्धि धर्म को धर्म ऐसा मानती है तथा और भी सम्पूर्ण आर्थिक को विपरीत ही मानती है वह बुद्धि तामसी है।'

'जिस बुद्धि से अव्यभिचारिणी धारणा से प्राणी मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है वह धारणा तो सत्व की है और हे पृथा पुत्र अर्जुन फल की इच्छा वाला प्राणी जिस धारणा द्वारा धर्म अर्थ कर कामों को धारण करता है वह राजसी धारणा है।'

'हे अर्जुन !

जो कर्ता आशक्ति से रहित और अहंकार के वचन न बोलनें धैर्य और उत्साह से युक्त कार्य की सिद्धि होने न होने में शोकादि से रहित है वह कर्ता सात्विक कहा जाता है।'

जो आसक्ति से युक्त कर्मों के फल को चाहने वाले और लोभी हैं वह कर्ता राजस कहा गया है।

जो कर्ता विक्षोपयुक्त चितवाला शिक्षा से रहित घमंड़ी और धूर्त्त और दूसरों की आजीविका का नाशक एवं शोक स्वभाव वाला उसे तामस कर्ता कहा जाता है।

'हे अर्जुन बुद्धि का और धारण शक्ति का भी गुणों के कारण तीन भेद कहे हैं जो मैं तुम्हें सुनाता हूं।'

'हे पार्थ प्रवृति मार्ग और विवृति मार्ग को कथा कर्तव्य और अकर्तव्य को एवं भय को जो बुद्धि तत्व को जानता है वह सात्विकी बुद्धि है।'

'जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को नहीं जानता है वह राजसी बुद्धि है।'

'जो तमोगुणों से आवृत हुई बुद्धि अधर्म को ऐसा मानती है तथा और की सम्पूर्ण अर्थों को विपरीत ही मानती है वह बुद्धि तामानी होती है।'

'हे पार्थ, ध्यान योग के द्वारा जो मनुष्य मन प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है वह धारणा सात्विकी है।'

'जिस धारणा द्वारा धर्म, अर्थ और कामों को धारण करता है वह धारणा राजसी है।'

तथा दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारणा के निद्रा भय

चिंता और दुःख को भी नहीं छोड़ता वह धारणा तामसी है।

'हे अर्जुन सुख भी तीन प्रकार के हैं।'

जिस सुख में सार्थक, भजन, ध्यान और सेवादि के अभ्यास से रमण करता है और दुःखों के अन्त को प्राप्त होता है वह सुख साधक के लिए मृत के तुल्य है वह सात्विक कहा गया है।'

'जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है वह मानव के लिए विषय के बराबर होता है, इसलिए वह राजस कहा गया है।'

तथा जो सुख भोग काल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला है वह निद्रा आलस और प्रमोद से पैदा हुआ सुख तामस कहा जाता है।

'और हे पांडव पुत्र पृथ्वी अथवा देवताओं में कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जो तीनों गुणों से रहित है।'

'इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के तथा शूद्रों को भी कर्म स्वभाव से पैदा हुए गुणों करके विभक्त किये गए हैं उनके अंतः करण का निग्रह, इन्द्रियों का दमन वाहर भीतर की शुद्धि धर्म के लिए कष्ट सहन करना सब ब्राह्मण का स्वभाविक कर्म है।'

'शूरवीरता तेज धैर्य चतुरता वीरता धर्म का पालन करने वाला क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाला होता है।'

'खेती, गोपालन विक्रय रूप सत्य व्यवहार वैश्य के कर्म हैं।'

'सब वर्नों की सेवा करना शूद्र का धर्म।'

'हे अर्जुन जिस परमात्मा से सर्व भूतों की उत्पत्ति होती है, उसे कर्म द्वारा पूजन करके प्राणी परमसिद्धि प्राप्त करता है।'

'हे पांडव पुत्र, दोषयुक्त स्वभाविक कर्म को नहीं छोड़ता।'

हे अर्जुन सर्वत्र आशक्ति रहित बुद्धिवाला और विजयता प्राणी भी नैष्यकर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है।'

'इसलिए वीर अर्जुन, अंतःकरण को शुद्ध के लिए सिद्धांतों को प्राप्त हुआ पुरुष जैसे ब्रह्मा को पा लेता है उसको भी तुम मेरे से संक्षेप में जानो।'

'हे अर्जुन, विशुद्ध से युक्त एकांत और शुद्धदेश का सेवन करने वाला तथा मिथ्याचारी होते हुए मन वाणी और दृढ़ वैराग्य को भली भांति प्राप्त हुआ प्राणी अन्तःकरण को वस में करके विषय भोग को त्याग कर क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार को छोड़ दे तो वह मुझको बहुत प्यारा लगता है वही मेरा सच्चा भक्त है।'

मेरे परायण हुआ निष्काम कर्म योगी तो सम्पूर्ण कर्म को सदा करता हुआ भी मेरी कृपा से सनातन अविनाशी परम पद को प्राप्त हो जाता है।

इसलिए 'हे अर्जुन, तुम मुझ पर विश्वास करके मेरे हो जाओ जो मैंने तुम्हें ज्ञान का सागर दिया है उसे सुनकर अब तुम यह निर्णय कर डालो कि मैं युद्ध करूंगा यही तुम्हारा क्षत्रिय पन है यही तुम्हारा धर्म है।'

'हे अर्जुन जिस कर्म को तुम मोह से नहीं करना चाहते उसे भी पूर्व कृत स्वभाविक कर्म से बंधा हुआ परवश होकर करोगे इसलिए ही भारत, तुम अपने कर्तव्य का पालन करो, कर्तव्य का पालन करना तुम्हारा सबसे बड़ा धर्म है, तुम मेरे भक्त हो मेरा आर्शीवाद तुम्हारे साथ है।'

'इसलिए हे अर्जुन सर्व धर्म को अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को त्याग कर केवल मुझ सच्चिंदानन्दघन वासुदेव परमा

त्मा को ही अनन्य शरण को प्राप्त हो तुम्हें मैं सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा।'

इस प्रकार गीता का महात्म्य कहकर भगवान श्रीकृष्ण जी आनन्द कन्द ने अर्जुन से पूछा—

'हे पांडव पुत्र क्या यह मेरा वचन तुमने एकाग्र चित्त से श्रवण किया, क्या तुम्हारा अज्ञान से पैदा हुआ मोह नष्ट हो गया।'

'हे प्रभु, आपके ज्ञान प्रकाश से मेरा मोह नष्ट हो गया है, अब मैंने माया जाल के सारे बंधन तोड़ दिए हैं, अब तो मैं आप की आज्ञा का पालन करूंगा।'

'धन्य हो पांडव पुत्र तुम महाभारत के सबसे बड़े वीर बन कर इतिहास में अमर रहोगे।'

इतनी कथा सुनाते हुए संजय धृतराष्ट्र से बोला—

'हे राजन मैंने अर्जुन और श्री कृष्ण जी के अद्‌भुत रहस्य-युक्त सभी वचनों को सुना और श्री व्यास जी की कृपा से दिव्य दृष्टि द्वारा मैंने इस परम रहस्य युक्त गोपनीय योग को साक्षात कहते हुए स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान से सुना है।'

'इसलिए हे राजन श्रीकृष्ण भगवान और अर्जुन इस कल्याण कारक और अद्‌भुत संवाद को पुनः-पुनः स्मरण करके मैं बार-बार खुश होता हूं।'

'तथा हे राजन विशेष क्या कहूं जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान हैं और जहां गांडीवधारी अर्जुन है, वहीं पर विजय विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है यह कहकर संजय ने अपनी बात समाप्त कर दी।

॥ समाप्त ॥

श्रीमद् भागवत गीता